तुलसीदास

और

विनय पत्रिका

(आलोचनात्मक अध्ययन)

श्री राकेश, एम० ए०

प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

तुलसीदास और विनय-पत्रिका

तुलसीदास और विनय-पत्रिका

[प्रश्नोत्तर]

लेखक
श्री राकेश, एम० ए०

प्रकाशन केन्द्र
रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ
(Phone : 73035)

● प्रकाशन : **प्रकाशन केन्द्र,**
रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ-**226020**

● मूल्य : सोलह रुपये पचास पैसे (16.50) मात्र ।

अपनी बात

गोस्वामी तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट कृति 'विनय-पत्रिका' जहाँ भक्तों की कण्ठहार है, ज्ञानियों की ज्ञान-पिपासा तथा दार्शनिकों की जिज्ञासा शान्त करने वाली है, वहाँ दैन्य एवं आत्म-दोष-दर्शन का अथाह शान्त-रस-सागर होने के कारण सामान्य गृहस्थों को शुद्ध, सात्विक और आनन्दमय जीवन-पद्धति देने वाली पावन सुरसरी भी है। साहित्यिक पिपासु भी इसका अवगाहन कर भाव-गाम्भीर्य, अर्थ-सौष्ठव, उक्ति-वैचित्र्य एवं प्रौढ़ कला-विधान की मणियां प्राप्त करते हैं। प्रबन्ध-मुक्तक शैली, काव्य-संगीत, व्यक्ति-समाज, भक्ति-दर्शन, काव्य-जीवन, आदर्श-यथार्थ, साहित्यिक भाषा, जन-भाषा और विभिन्न साधना-पद्धतियों एवं दार्शनिक वादों के समन्वय की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' अन्यतम कृति है। इस छोटी-सी कृति में मैंने 'विनय-पत्रिका' की आत्मा-विषय वस्तु, काव्य-सौन्दर्य और कला-विधान को इतने सरल और सुगम रूप में परखने का प्रयास किया है कि छात्रों को परीक्षा की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' का अध्ययन अति सुगम हो जाय। आशा है कि यह कृति परीक्षा-महासागर-संतरण के लिये सुतरणी सिद्ध होगी।

—राकेश

विनय-पत्रिका पर मत

"गोस्वामी जी की यह रचना अधिक संस्कृत-गर्भित है। इन्होंने इसमें दोनों प्रकार की मधुरता (संस्कृति की कोमल कान्त पदावली का माधुर्य तथा शुद्ध-भाषा की मिठास) का बहुत ही अनूठा सम्मिश्रण किया है।"

— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"'विनय-पत्रिका' एक पूर्ण रचना है, जिसकी रूपरेखा ग्रन्थ के रूप में हुई हैं। साधारण रूप से देखने में पद क्रम-हीन जान पड़ते हैं, पर वास्तव में उनमें एक प्रवाह है—क्रम है। प्रारम्भ मे गणेश, सूर्य, शिव, पार्वती आदि की स्तुति है। तुलसीदास स्मार्त-वैष्णव थे अतः वे स्मार्त-वैष्णवों के अनुसार पाँच देवताओं की पूजा में विश्वास करते थे। विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश—इन्हीं पंचदेवों की स्तुति से उन्होंने 'विनय-पत्रिका' प्रारम्भ की है। विष्णुरूप राम की स्तुति तो ग्रन्थ भर में है। प्रारम्भ में चारों देवताओं की वन्दना की गई है, विचारों की विश्रृंखलता ग्रन्थ के स्फुट होने का कोई कारण नहीं हो सकती। पदों में रचना होने के कारण प्रबन्धात्मकता की रक्षा नहीं की जा सकती। फिर इस रचना में कवि का आत्म-निवेदन है, जिसमें भावनाओं का अनियमन कोई आश्चर्य की बात नही हैं। अतः इन सभी कारणों से 'विनय-पत्रिका' एक सम्यक् ग्रन्थ है।"

—डॉ० विनय कुमार

" 'विनय-पत्रिका' ज्ञानियों की सिद्धान्त-मंजूषा है, पण्डितों की पाण्डित्य-पिपासा है। योगियों की समाधि-स्थली है, एवं प्रेमियों और भक्तों की 'मानस-तरंगिणी' है। उसकी आराधना लाख में एक से बनी है। जीव का दैन्य असामर्थ्य, लघुत्व और स्वामी पुरुषार्थ, सामर्थ्य और महत्व विलक्षण दिव्य उद्‌गारों में अभिव्यक्त किया गया है। अगाध पाण्डित्य अर्थ-गाम्भीर्य, अनुपम उक्ति-चमत्कार, ललित सौष्ठव और अनन्त अनुराग-माधुर्य इस ग्रन्थ-रत्न में देखने को मिलता है। गोस्वामीजी की निर्मल आत्मा इसी शुभ दर्पण में दिखाई देती है। इस रत्न के पारखी जौहरी संसार में इने-गिने ही मिलेंगे।

इसमें कई पद ऐसे मिलेंगे, जिनका अनुशीलन करने से तत्कालीन भारतीय परिस्थिति का चित्र खचित हो जायगा। भाषा की क्लिष्टता एवं भक्ति की गम्भीरता इसमें निःसन्देह है, पर साथ ही सरलता और सरसता का भी अभाव नहीं है। इसमें वह झलक है, जिसे देखने को लाखों में कहीं एक आँख मिलेगी।"

—श्री वियोगी हरि

"गोस्वामी तुलसीदास के गुरु गोविन्द रूप में दर्शन 'विनय-पत्रिका' में ही होते हैं। चरम महत्व के मनुष्य-ग्राह्य मध्य-स्वरूप के सम्मुख भाव-विह्वल भक्त-हृदय में जो भाव-तरंगें उठती हैं, उन्हीं की माला 'विनय-पत्रिका' है। कलियुग द्वारा अत्यन्त पीड़ित होने पर भगवान श्रीरामचन्द्र जी के सम्मुख उपस्थित की जाने वाली यह एक प्रकार की आवेदन-पत्रिका है—कलियुग के विरुद्ध शिकायत-पत्र-सा है।"

—डॉ० महेश

———

अनुक्रमण

प्रश्न | पृष्ठ

1 विनय-पत्रिका का युग

2. विनय-पत्रिका में कवि का जीवन-वृत्त

3. विनय-पत्रिका की रचना का प्रयोजन

4. विनय-पत्रिका की विषय-वस्तु

7. विनय-पत्रिका में कलापक्ष

8. विनय-पत्रिका में भाव-सौन्दर्य

———

अध्याय 1

विनय-पत्रिका का युग

प्रश्न 1—विनय-पत्रिका की रचना में तत्कालीन युग कहाँ तक प्रेरक-शक्ति के रूप में रहा है ?

अथवा

प्रश्न 2—'विनय-पत्रिका' कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवेश पर एक दृष्टि डालते हुए 'विनय-पत्रिका' की रचना के मूल में युग-प्रेरणा के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये ।

स्मृति-संकेत

1. 'विनय-पत्रिका' की रचना सं० 1666 और सं० 1680 के मध्य में हुई ।
2. तुलसी ने अपने युग की भीषण परिस्थितियों से दुखी होकर उसे कलियुग का नाम दिया और युग-कष्टों के निवारण के लिये 'विनय-पत्रिका' राम के दरबार में भेजी ।
3. 'विनय-पत्रिका' की वाणी में तत्कालीन युग प्रतिबिम्बित हो उठा है ।
4. 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास ने समाज की व्यथा अपनी व्यथा बनाकर प्रस्तुत की ।
5. तत्कालीन शासकीय अत्याचार, धार्मिक असन्तुलन तथा समाज की विषम और दयनीय स्थिति ने तुलसी को 'विनय-पत्रिका' लिखने के लिए प्रेरित किया ।

उत्तर—विनय-पत्रिका का युग—भक्ति-प्रधान काव्य होते हुए भी 'विनय-पत्रिका' में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक युग प्रतिबिम्बित हो उठा है । मुगल-शासन के अत्याचारों से हिन्दू-जनता त्रस्त थी । वर्णाश्रम-व्यवस्था शिथिल हो चुकी थी । तत्कालीन समाज पतन के गर्त में गिर रहा था, अन्ध विश्वासों ने समाज को जकड़ रखा था, जाति-पाँति, छुआछूत की भावना समाज में घर कर रही थी, दुखी और दलित समाज में उपेक्षित थे । और राजनैतिक दशा तो अति शोचनीय थी ।

> "राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है ।
> नीति प्रतीति प्रीति परिमित रति हेतुवाद हठि हेरि हई है ।।"

'विनय-पत्रिका' का रचना-युग सं० 1666 से लेकर सं० 1680 तक माना जाता है । यह युग मुगल-साम्राज्य के चरमोत्कर्ष का युग था । गोस्वामी तुलसीदास ने अकबर के प्रताप के प्रचण्ड मार्तण्ड को देखा था । वे जहाँगीर के प्रारम्भिक समय में भी रहे । उन्होंने राजनैतिक स्थिति और समाज के व्यापक क्षेत्र को खुली आँखों से देखा । यही कारण है कि युग-परिवेश और युग की विषम परिस्थितियों ने उनकी

सामाजिक व्यथा को व्यक्तिगत व्यथा बनाकर 'विनय-पत्रिका' में रखने के लिये प्रेरित किया। 'विनय-पत्रिका के समय का राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवेश निम्न प्रकार था :—

राजनैतिक परिवेश

तुलसी का युग प्रबल, प्रतापी सम्राट अकबर का समय था। अकबर की कपट-नीति ने समस्त देश को आच्छादित कर लिया था ! अनेक हिन्दू राजा अकबर की कुटिल नीति से पराजित होकर उससे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे। महाराणा प्रताप जैसे स्वाभिमानी वन-वन भटकने के लिये विवश हो गये थे। अकबर के हाथ मीनाबाजार में राजपूतों की ललनाओं का सतीत्व हरण करने के लिए बढ़ रहे थे। मुगल-राजभवन विलासिता के केन्द्र थे और राजकर्मचारी भी विलासिता में आकंठ निमग्न हो रहे थे। किसानों की पसीने की कमाई से राज्य-कोष और साम्राज्य की शान-शौकत में वृद्धि हो रही थी। समाज विषम स्थिति में पिस रहा था :

"खेती न किसान को भिखारी को न भीख वलि,
बनिक को न बानिक न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन सब छीजत हैं सीद्यमान,
एक एकन सौं कहैं कहाँ जायँ का करी॥"

—कवितावली

जनता अपनी कष्ट-गाथा सुनाने के लिये बादशाह तक बड़ी कठिनाई से पहुँच पाती थी। अनेक छोटे-बड़े अधिकारी उनके पथ के व्यवधान थे।

धार्मिक परिवेश

शासकों की शक्ति की सहायता से इस्लाम-धर्म का प्रचार हो रहा था। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता ने हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित किया था। उसका भी मुख्य ध्येय इस्लाम धर्म का प्रचार करना ही था। 'दीन-इलाही' की स्थापना और स्वयं कभी-कभी हिन्दू वेश में रहना अकबर की कुटिल नीति के ही अंग थे। इस प्रकार उसकी धार्मिक सहिष्णुता ने आन्तरिक आघात ही पहुँचाया।

परस्पर विरोधी विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय हिन्दू धर्म की जड़ खोखली कर रहे थे। हिन्दू-जनता अन्धविश्वासों का शिकार हो रही थी। शैव, वैष्णव, शाक्त, नाथपंथी-हठयोगी आदि आपस में लड़ते-झगड़ते थे। मन्दिरों और मठों से पापाचार पनप रहा था। हठयोगी, अघोरी, औघड़ आदि साधु अपने चमत्कारों से धर्म-प्राण जनता को चकित कर रहे थे। निराकारोपासक सन्तों की उल्टी-सीधी बातें जनता की समझ में न आती थीं। जनता घट के भीतर ईश्वर को खोजने में असमर्थ होकर निराशा के अन्धकार में भटक रही थी। वर्णाश्रम धर्म की कठोरता ने हिन्दू धर्म की नींव हिला दी थी। धर्म एक पाखण्ड बन गया था। बौद्ध धर्म की बुराइयाँ भारतीय धार्मिक जीवन को विषाक्त कर रही थीं। शंकराचार्य का अव्यावहारिक तत्व-दर्शन सामान्य जनता की समझ से परे था। मुल्ला-मौलवियों के कट्टरपन ने धार्मिक क्षेत्र में अत्यधिक कटुता उत्पन्न कर दी थी। रामानुज, मध्य, निम्बार्क, वल्लभ आदि आचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से धार्मिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। इनके भक्ति-सिद्धान्तों से नीरस-जीवन में कुछ सरसता आ गई।

सामाजिक परिवेश

तुलसी के समय का समाज राजकीय अत्याचारों से पीड़ित होकर विविध दुखों से भरा हुआ था। सारा समाज दो भागों में विभाजित था—एक वर्ग उन धनी लोगों का था जिनका कि सम्बन्ध शाही दरबार से था, दूसरा वर्ग उस सामान्य जन-समुदाय का था, जो बड़ी कठिनाई में अपना पेट भर पाता था। जनता आर्थिक उत्पीड़न तथा शोषण के चक्र में पिसी जा रही थी। मुसलमान विलास का जीवन व्यतीत करते थे। निम्न जाति के लोगों से बेगार ली जाती थी। भीख माँगने वालों की संख्या बढ़ रही थी।

सारा समाज रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की शृंखलाओं में जकड़ा हुआ था। चमत्कार दिखाने वाले ढोंगी साधुओं की समाज में पूजा होती थी। दैवी प्रकोपों का ऐसा क्रम लगा हुआ था कि अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदि कोई न कोई संकट उपस्थित हो जाता था। संकटों के झकोरों ने जनता के आत्म-गौरव की भावना का लोप कर दिया था। नारियों को समाज में पशुवत् समझा जाता था। ईश्वरोपासना के नाम पर देवी-देवताओं, पीरों, फकीरों, सन्तों, महन्तों से लेकर पेड़-पौधों और कीट-पतंगों तक की पूजा प्रचलित हो गई थी। इस प्रकार 'विनय-पत्रिका' के युग में समाज निराशा के घनघोर अन्धकार से आवृत था।

युग-प्रेरणा और विनय-पत्रिका

तुलसी जैसे लोक-नायक और युग-द्रष्टा को तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों ने प्रभावित किया। युग की विषम और दुःखमय परिस्थितियों को अपनी व्यथा के माध्यम से 'विनय-पत्रिका' में व्यक्त करने की प्रेरणा तुलसी को तत्कालीन परिवेश ने ही दी। वे युग की विषम परिस्थितियों को 'रामचरित मानस' में अभिव्यक्त कर उनसे उद्धार के लिये राम के जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर चुके थे। परन्तु 'रामचरित मानस' में वे पूर्ण रूप से युग की विषम परिस्थितियों का यथोचित समाधान प्रस्तुत कर पूर्ण सन्तुष्ट न हो सके। अतः उनकी अन्तःवृत्ति ने 'विनय-पत्रिका' लिखने के लिए प्रेरित किया।

तुलसी के समय का समाज अत्यन्त दयनीय अवस्था में था। वह अपने त्राण के लिये अलौकिक शक्तियों से अर्चना करता था, क्योंकि शासन के अत्याचारों से मुक्ति का उसे और कोई आश्रय नहीं था। बादशाह तक उसकी जुहार पहुँच नहीं सकती थी। जन-जीवन की यही कातरतापूर्ण वाणी 'विनय-पत्रिका' में गूंजी है। 'विनय-पत्रिका' में तुलसी के व्यक्तित्व के जिस पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है वह तत्कालीन जन-जीवन की व्यापक पीड़ा है। समय और समाज की इस विषम स्थिति ने तुलसी को प्रेरित किया कि वे उसके कष्टों को 'विनय-पत्रिका' में लिखकर राम के दरबार में प्रस्तुत करें। तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' में यह सन्देश दिया है कि राम-भक्ति में तन्मय होकर कलियुग की भयंकर पीड़ाओं पर विजय पायी जा सकती है। 'विनय-पत्रिका' का उद्देश्य राम-भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन और कलि-काल-पीड़ित जीवों को भक्ति का मार्ग दिखाना हैं।

तत्कालीन समाज नाना प्रकार के धर्मों, सम्प्रदायों और उपासनाओं में खोया हुआ था। तुलसी ने किसी देवता का खण्डन या विरोध न करके सबकी स्मृति की,

स्तुति की, किन्तु अन्तिम लक्ष्य राम की भक्ति प्राप्त करना ही घोषित किया। वे अन्य देवताओं की अर्चना करते हुये राम-भक्ति ही मांगते हैं :

"माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं राम सिय मानस मोरे॥"

इस प्रकार तुलसी ने जनता का ध्यान अन्तिम साध्य राम की महिमा की ओर खींचा और युग की अन्य आडम्बरपूर्ण उपासना-पद्धतियों की ओर से जनता का ध्यान खींचकर सुगम तथा सीधा मार्ग बताने के लिए 'विनय-पत्रिका' की रचना की। तत्कालीन शासकों के अत्याचार, धार्मिक असन्तुलन तथा समाज की दयनीय परिस्थितियों ने युग-प्रेरणा का ऐसा रूप धारण किया कि तुलसी ने युग की पीड़ा को अपनी बनाकर व्यक्त करने के लिए 'विनय-पत्रिका' की रचना की।

तत्कालीन निम्न विषम परिस्थितियाँ जिनका चित्र निम्न पद में अंकित हुआ है, 'विनय-पत्रिका' की रचना की मूल प्रेरणा बनीं :

"राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥
आश्रम वरन धरम बिरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग रई है॥
सांत सत्य सुभ रीत गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है॥
सीदत साधु, साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है॥
परमारथ स्वारथ साधन भए अफल सफल, नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर विवस विकल जामति न बई है॥"

समाज की यही व्यथा 'विनय-पत्रिका' का मूल विषय है, जिसका आद्यान्त निवेदन कर तुलसी मंगलमय ऐसे राम-राज्य के होने का सन्देश देते हैं जिसमें समाज सर्व-सुख सम्पन्न हो जाता है। राजा रामचन्द्र तुलसी की विनय-पत्रिका स्वीकार करते हैं। उनकी कृपा से पृथ्वी की गोद मंगलमयी हो जाती है :

'भरे भाग अनुराग लाग कहें, राम अवध वितवनि नितई है।
बिनती सुनि सानन्द हेरि हँसि करुना वारि भूमि भिजई है॥
राम राज भयो काज सकुन सुभ, राजा राम जगत विजयी है।
समरथ बड़ो सुज्ञान सुसाहब सुकृत सैन हारत जितई है॥
सुजन सुभाउ सराहत सादर अनायास साँसति बितई है।
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि विरुद सदई है॥
तुलसी प्रभु आरत आरतिहर, अभय बाँह केहि-केहि न दई है॥"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' तत्कालीन समाज की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। समाज की विषम परिस्थितियों ने तुलसी को समाज की व्यथा की अभिव्यक्ति करने के लिये प्रेरित किया और इसी प्रेरणा से उन्होंने 'विनय-पत्रिका' की रचना की 'विनय-पत्रिका' में युग-प्रेरणा का स्वरूप स्पष्ट दीख पड़ता है। तुलसी ने अपने समय के युग को कलिकाल की संज्ञा दी और इससे त्राण पाने का मूल मन्त्र उन्होंने राम-भक्ति बतलाया और इसी राम-भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करने के लिये उन्होंने 'विनय-पत्रिका' को रचा। अतः 'विनय-पत्रिका' में तुलसी की व्यथा उनके युग की सम्पूर्ण व्यथा है और इस व्यथा से मुक्ति दिलाने में

राम-भक्ति ही सक्षम है। उनकी यही धारणा और उद्देश्य 'विनय-पत्रिका' की रचना का कारण बना।

प्रश्न 3—तुलसी की 'विनय-पत्रिका' तत्कालीन युग की विषम परिस्थितियों का परिणाम है ; इसमें उन्होंने युग की विषम परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए युग की व्यथा ही अपनी व्यथा के माध्यम से अभिव्यक्त की है !"—इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

उत्तर—कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। यही कारण है कि उसकी रचना युग-परिवेश और युग की परिस्थितियों से अछूती नहीं रह सकती, फिर गोस्वामी तुलसीदास तो युग-द्रष्टा और युग-प्रतिनिधि लोकनायक थे। उनके समय में राजनीतिक दशा अस्त-व्यस्त थी। शासकों के अत्याचारों से जन-जीवन त्रस्त था। जनता रूढ़ियों, बहुदेवोपासना और अनेक मतामतान्तरों में भटक रही थी। तत्कालीन युग का सामाजिक जीवन अत्यन्त विपन्न और दलित स्थिति को पहुँच गया था। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने इस युग को कलियुग कहकर पुकारा और 'रामचरित-मानस' के उत्तरकाण्ड में कलियुग की विषम परिस्थितियों का चित्रण करके इससे त्राण पाने के लिए राम-राज्य और रामभक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया। गोस्वामी तुलसीदास कलियुग को राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विभीषिकाओं से इतने अधिक त्रस्त थे कि 'रामचरित मानस' में इनको उपस्थित कर उनको शान्ति नहीं मिली। उन्होंने इसके लिये 'विनय-पत्रिका' की रचना की और इस पत्रिका में शोक-व्यथा को अपनी व्यथा मानकर अभिव्यक्त किया। इस प्रकार कलियुग द्वारा उपस्थित की गई विषम परिस्थितियों और उनसे उद्धार पाने में व्यक्ति और समाज की असमर्थता बतलाकर राम से निवेदन किया कि वे कलियुग को उसकी कुचालों के लिये दण्ड दें। 'विनय-पत्रिका' राम के दरबार में प्रस्तुत होती है। राम उसे स्वीकृत करते है और उनकी कृपा से राम-राज्य की प्रतिष्ठा से लोक में मंगल छा जाता है।

'विनय पत्रिका' भक्त क हृदय की पुकार होने के कारण भक्ति-ग्रन्थ है। परन्तु भक्त-कवि यह पुकार अपनी व्यथा की अभिव्यक्ति में युग की व्यथा को अभिव्यक्त करती है, अतः इसमें तुलसी के युग की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण मिल जाता है।

तुलसी के समय राजनैतिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो गइ थी। राजसमाज अर्थात् राजा और उसके अधिकारी लोग अत्याचारी हो गये थे, व नित्य कल्पना करके करोड़ों पाप करते रहते थे और नित्य नई-नई कुचालें चलते रहते थे। कलियुग के प्रभाव ने राजनीति, विश्व-प्रेम, धर्म-मर्यादा आदि की अच्छी बातों को खोज-खोजकर नष्ट कर डाला था :

"राज-समाज कुसाज कोटि कटु, कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति-प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि, हेरि हई है।"

कामधेनु रूपी पृथ्वी कलियुग रूपी कसाई के हाथ में पड़ी हुई विवश और व्याकुल हो रही है। उसमें जो कुछ बोया जाता है, वह जमता नहीं है। इस कलियुग की कुचालों का कहाँ तक वर्णन किया जाय, यह तो बेकार के काम करता फिरता है :

"कामधेनु धरनी कलि-गोमर, विवस बिकल जामति न बई है।
कलि करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल दई है।"

तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' में तत्कालीन कुशासन को कलियुग का शासन कहा है। उसकी कुचालों का वर्णन जो सन्तों ने किया है, वह सही है। यदि राम उसे अपने पास बुलाकर डांट दें, तो वह अपनी कुचालों को अवश्य छोड़ देगा :

"कलि कुचाल जो सन्तन कही सोइ सही,
मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को।
निकट बोलि बलि बरजिये,
परिहरै ख्याल अब तुलसीदास जड़ जी को॥"

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है।

'विनय-पत्रिका' में तत्कालीन वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था की शिथिलता, तत्कालीन समाज की पतनावस्था, समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, काम, क्रोध, मद आदि से त्रस्त जन-जीवन, साधु और सज्जनों के प्रति बढ़ती हुई अश्रद्धा, समाज में फैली हुई जाति-पाँति और छुआछूत की संकीर्ण भावनाओं, मुसलमानों की विलासिता और उसके प्रभाव से दुखी-दरिद्रों की दुर्दशा तथा उपेक्षित वर्ग के यथार्थ चित्र अंकित हुये हैं।

निम्न पद में समाज की घोर पतितावस्था का चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने अंकित किया है। ब्राह्मणों की बुद्धि को क्रोध, राग, मद, लोभ और लालच ने निगल लिया है। आश्रम, वर्ण, लोक-वेद आदि सभी की मर्यादाएँ नष्ट हो गई हैं। इनके नष्ट होने से प्रजा पतित हो गई है। वह पाप और पाखण्ड में निमग्न रहती है। सभी अपने रंग में डूबे हुए हैं, शान्ति, सत्य और अच्छी रीतियों के स्थान पर कपट, कुटिलता और कुरीतियों का प्रसार हो गया है। साधु-सन्त दुःखी हैं, सज्जनता के लिए कोई स्थान नहीं रहा है, दुष्टता प्रसन्न हो रही है और दुष्ट आनन्द कर रहे हैं। धर्म को लोगों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने का साधन बना लिया है। सारी सिद्धियाँ सारहीन हो गई हैं :

"तिनकी मति रिस रार मोह-मद लोभ लालची लीलि लई है।
आश्रम बरन-धरम बिरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है॥
प्रजा पतित पाखंड पाप-रत अपने अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुभ नीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है॥
सीदत साधु साधुता सीदति खल बिलसत हुलसति खलई है।
परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल, सफल नहिं सिद्धि सई है॥"

पृथ्वी जो कामधेनु थी वह कलियुग रूपी कसाई के हाथ में पड़कर विवश और व्याकुल हो रही है। उसमें बोया हुआ अन्न जमता नहीं है। सारी खेती-बारी नष्ट हो गई है :

"कामधेनु धरनी कलि-गोमर,
बिवस बिकल जामति न बई है।"

उक्त उदाहरण में तत्कालीन युग की यथार्थ स्थिति सामने आ जाती है। वर्णाश्रम व्यवस्था सर्वथा शिथिल हो गई थी। पोथी और पुराणों में ही धर्म, वर्ण और आश्रम रह गये थे। बिना कर्त्तव्य-पालन किये हुए ढोंगी वेश बनाकर समाज को ठग रहे थे :

"धरम बरन आश्रमनि को पैयत पोथी ही पुरान।
करतब बिन बेस देखिये ज्यों सरीर बिनु प्रान॥"

'विनय-पत्रिका' के युग में जाति-पाँति और छुआछूत की संकीर्ण मान्यताओं का प्रसार था। निम्न कथन इसी स्थिति की ओर संकेत करता है :

"लोग कहैं पोच सो न सोच न संकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं।"

समाज में दीन-हीन और दुखियों की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। समाज उनकी उपेक्षा करता था। ये लोग द्वार-द्वार घूमते थे, किन्तु कोई इनसे बात तक न पूछता था :

"द्वार-द्वार दीनता कही, काढ़ि रद परि पाहु।
हैं दयालु दुनी दस दिसा, दुख दोस दलन-छम कियो न संभासन काहू।"

समाज में स्वार्थ की भावना इतनी अधिक बढ़ गई थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ-साधन में लगा हुआ था। स्वार्थ के साथी अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर छोड़ने में विलम्ब न करते थे :

"अगुन अलायक-आलसी जानि अधम अनेरो।
तिनरा को सो टोटक, औचट उलटि न हेरो॥"

'विनय-पत्रिका' के युग में असहायों और निर्बलों के लिए राम की शरण के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय न रह गया था। दीनों को शरण देने वाला राम के अतिरिक्त अन्य कोई तुलसी की दृष्टि में नहीं था :

"राम राखिए सरन राखि आए सब दिन,
विदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयाल दूजो।"

धर्म-साधना का रूप विकृत हो जाने से अन्धविश्वास जन-जीवन में घर किए हुए था। योग-साधना, तीर्थाटन आदि में लोगों की रुचि थी। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि दुर्वासनाओं ने मिलकर ज्ञान और वैराग्य की सुन्दर वृत्तियों को हर लिया था। अनेक प्रकार के मत और अनेक प्रकार के पंथ, झगड़े और टंटे की जड़ बने हुए थे। इस विषम परिस्थिति में केवल राम-भजन ही राज-मार्ग के समान प्रशस्त और लक्ष्य तक पहुंचाने वाला है :

"तप, तीरथ, उपवास, दान मख जेहि जो रुचै करोसो।
पायेहि पै जानिबो करम फल भरि-भरि वेद भरोसो॥
आगम विधि जप-जाग करत नर मरत न काज सरोसो।
सुख सपनेहुँ न जोग-सिधि साधन रोग-वियोग धरोसो॥"
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ज्ञान-बिराग हरोसो।
बहुमत गुनि बहु पंथ पुरातनि जहाँ-तहाँ झगरोसो॥

तत्कालीन व्यक्तिगत जीवन विषमताओं से भरा होकर अस्थिर हो रहा था। मुसलमानों के विलास का युग-व्यापी प्रभाव समाज पर पड़ रहा था। इसकी अभिव्यक्ति गोस्वामी तुलसीदास ने वैयक्तिक अनुभूति का रूप देकर की है :

"लरिकाईं बीती अचेत चित, चंचलता चौगुने चाय।
जोबन जुर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोस भरि मदन वाय॥"

वैयक्तिक जीवन की वैयक्तिकता और अस्थिरता में व्यक्ति का मन कभी योग की ओर झुकता और कभी भोग की ओर। कभी वह दीन मति-हीन और रंक की स्थिति अनुभव करता और कभी अभिमानी भूप बन जाता, कभी वह पाखण्डी पंडित बनता और कभी अपने को धर्म-रत ज्ञानी कहता :

"कबहु जोग रत भोग निरत सठ हठ बियोग बस होई।

× × ×

कबहु दीन मति हीन रंकतर, कबहु भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पण्डित बिडंबरत, कबहुँ धर्मरत ज्ञानी।"

निष्कर्ष-- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भक्ति का ग्रन्थ होते हुए भी 'विनय-पत्रिका' में युग परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं की गई। उसमे तत्कालीन युग की परिस्थितियों का पर्याप्त चित्रण हुआ है। तुलसी ने दयनीय समाज का अपने को प्रतिनिधि बनाकर 'विनय-पत्रिका' मे रखा और अपनी दैन्य एव करुणा गाथा में कलियुग से त्रस्त युग की पुकार को ही स्थान दिया। इस सम्बन्ध में वियोगी हरि का निम्न कथन सत्य ही है :

"इसमें कई पद ऐसे मिलेंगे, जिनका अनुशीलन करने से तत्कालीन भारतीय परिस्थिति का चित्र खचित हो जायगा।......इसमें वह फलक है, जिसे देखने को लाख में कहीं एक आंख मिलेगी।

अध्याय 2

विनय-पत्रिका में कवि का जीवन-वृत्त

प्रश्न 4 'विनय-पत्रिका' में प्राप्त सामग्री के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालिये।

अथवा

प्रश्न 5 "विनय-पत्रिका गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बद्ध महत्वपूर्ण साक्ष्य है।" इस कथन को पल्लवित कीजिये।

अथवा

प्रश्न 6 "विनय-पत्रिका तुलसीदास के अंतरंग जीवन का इतिहास है।"
—इस कथन की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिये।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-परिचय का महत्त्वपूर्ण अन्तःसाक्ष्य है—

भारतवर्ष के आर्य कवि स्वान्तः सुखाय एवं परजनहिताय ही काव्य रचना में प्रवृत्त होते आये हैं। अपने व्यक्तित्व एवं जीवन-वृत्त के प्रति तो वे प्रायः उदासीन ही रहा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसी प्रकार के भक्त कवि थे। वह तो राम-नाम के दो अक्षरों 'रा' और 'म' को ही अपना माता-पिता, भाई-बन्धु आदि सर्वस्व ही मानते थे। उन्होंने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। जो कुछ लिखा भी है वह केवल प्रासंगिक रूप से ही। उनके द्वारा लिखित 'विनय-पत्रिका' से हमको उनके जीवन-वृत्त सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध होते हैं।

'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी जी के जीवन से सम्बन्धित निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होती है—

1. जन्म, नाम, एवं शैशव का परिचय।
2. जाति।
3. पारिवारिक जीवन—यौवनावस्था, विवाह एवं वृद्धावस्था।
4. गृह-त्याग और पर्यटन।
5. गुरु।
6. भक्ति का उदय।
7. जीवन के कुछ अनुभव।
8. अन्तिम काल।
9. स्वभाव एवं आचरण।
10. जीवन का ध्येय।

'विनय-पत्रिका' के आधार पर उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-वृत्त निम्नलिखित प्रकार हमारे सामने आता है—

जन्म, नाम एवं शैशव

जन्म—जन्म, नाम और बाल्यकाल पर प्रकाश डालने वाली पंक्तियाँ ये हैं—

जननि-जनक तज्यो जनमि करमु बिनु बिधिहुँ तज्यो अब डेरे। [पद 227]

× × ×

तनु जन्यो कुटि कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूँ। [पद 275]

यह प्रवाद प्रचलित है कि तुलसी का जन्म अशुभ घड़ी में हुआ था। इस कारण इनके माता-पिता ने इनको जन्म के पश्चात् तुरन्त ही त्याग दिया था। उक्त पंक्तियों के कतिपय विद्वान उपर्युक्त प्रवाद का समर्थन देखते हैं।

विद्वानों का दूसरा वर्ग तज्यो का अर्थ 'छोड़ दिया' न करके 'छोड़ गये' करता है—अर्थात् वे स्वर्गवासी हो गये।

तुलसी की 'दैन्य-व्यंजक' एक पंक्ति 'मोहुँ सों कोउ-कोउ कहत रामहि को, सा प्रसंग कहि केरे'—का अर्थ कुछ लोग यह करते हैं कि लोग उनके माता-पिता को जानते तक न थे और इस कारण उनको 'राम का' कहा करते थे। जो भी हो, तुलसी बाल्यावस्था में ही माता-पिता के स्नेह से वंचित हो गये थे और इनका बाल्यकाल कठिनाई से व्यतीत हुआ था।

नाम—'विनय-पत्रिका' के एक पद में लिखा है :

"राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो नाम।" [पद 76]

इस पंक्ति का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है—1. इनका बचपन का नाम 'रामबोला' था। तथा 2 यह बचपन में ही राम का नाम लेने लगे थे, अतः इनका नाम 'रामबोला' पड़ा एवं किसी कारणवश ये अनाथ हो गये और तब राम ने इनकी रक्षा की।

'तुलसी चरित' के अनुसार पहले इनका नाम तुलाराम था, परन्तु बाद में 'तुलसीराम' हो गया। अन्त में दैन्य एवं दास्य-भाव के कारण इन्होंने अपना नाम तुलसीदास कर लिया।

'विनय-पत्रिका' की उपर्युक्त पंक्ति के आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि माता-पिता के अभाव के कारण इनका विधिवत् नामकरण नहीं हो पाया। राम की शरण ले लेने के कारण इनका नाम 'रामबोला' पड़ गया था।

शैशव या बाल्यावस्था—'विनय-पत्रिका' की पंक्तियों से यह ध्वनि निकलती है कि इनका बाल्यकाल व्यर्थ ही व्यतीत हुआ और वे शिक्षा-दीक्षा से वंचित रहे :

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय। [पद 83]

× × ×

खेलत खात लरिकपन गो चलि। [पद 234]

जाति

'विनय-पत्रिका के केवल एक पद में तुलसीदास जी ने अपने परिवार की ओर संकेत किया है—

दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को। [पद 135]

इस पंक्ति में 'सुकुल' शब्द के आधार पर कुछ विद्वान इनको 'शुक्ल' ब्राह्मण मानते हैं, परन्तु अन्य प्रमाणों के द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती है। उक्त पंक्ति के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उनका जन्म सु+कुल=भले

कुल अथवा ब्राह्मण--परिवार में हुआ था। अन्य अनेक प्रमाणों द्वारा यह निश्चित है कि तुलसी का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

पारिवारिक जीवन (यौवनावस्था, विवाह एवं वृद्धावस्था)

यौवनावस्था—'विनय-पत्रिका' में इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि 'तुलसी दास' अपने यौवन-काल में स्त्री के प्रेम पाश में बंधे रहे थे और इनका यौवन काल व्यर्थ ही नष्ट हुआ था :

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।

× × ×

जोबन-जुर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाय। [पद 83]

× × ×

खेलत खात लरिकपन गो चलि जोबन जुबतिन लियो जीत। [पद 234]

× × ×

ताते तजी धरम मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम विषादा। [पद 136]

विवाह--'विनय-पत्रिका' में उपलब्ध इस पंक्ति 'मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।' (पद 76) के आधार पर कुछ विद्वान् यह कहते हैं कि तुलसीदास का विवाह हुआ ही नहीं था। परन्तु उन विद्वानों से हमारा निवेदन यह है कि उक्त कथन 'उपलक्षणा पद्धति' पर किया गया है। इस बात के अनेक पुष्ट प्रमाण हैं कि तुलसी का विवाह हुआ था और उनकी पत्नी का नाम 'रत्ना' था। 'विनय-पत्रिका' की इस पंक्ति—"जोबन जुरि जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाय" —के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनको युवती का सम्पर्क मिला था, अर्थात् इनका विवाह हुआ था और यह अपनी पत्नी में अत्यधिक अनुरक्त थे।

वृद्धावस्था— 'विनय-पत्रिका' में इनकी वृद्धावस्था का वर्णन उपलब्ध है—

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई।
सो प्रगट तनु जरजर जरावस, ब्याधि सूल सतावई।
सिर कंप इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, वचन काहु न भावई। [पद 136]

वृद्धावस्था में इनका शरीर जर्जर हो गया था और वह रोगों का घर बन गया था।

एक स्थल पर श्री गोस्वामी जी ने अपनी तीनों अवस्थाओं का परिचय दिया है।

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जोबन जुबतिन लियो जीत।
रोग-वियोग-सोक स्रम-संकुल, बड़ि वय ब्रथहि ब्यतीत। [पद 234]

गृह-त्याग और पर्यटन

गृह त्याग—'विनय-पत्रिका' में इस बात का स्पष्ट संकेत है कि वह दुःखी होकर घर से बाहर निकल गये थे :

दुःखित देख सन्तन कहयो सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरै न, सरन गये रघुवर और निबाहू।
[पद 275]

पर्यटन—'विनय-पत्रिका' में यह संकेत भी मिलता है कि उन्होंने चित्रकूट एवं काशी का पर्यटन किया था :

अब चित चेतु चित्रकूटहिं चलु। [पद 24]

× × ×

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकाली। [पद 22]

× × ×

चित्रकूट को चरित चेतु चित करि सो। [पद 264]

गुरु

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के अन्तर्गत तो अपने गुरु 'नरहरिदास' का स्पष्ट उल्लेख किया है। परन्तु 'विनय-पत्रिका' में केवल इतना लिखा है कि मेरे गुरु ने शास्त्रों में व्यक्त मतभेद को देख कर रामभजन का आदेश दिया :

बहुमत सुनि सुनि पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोंहि लगत राज डगरो सो। [पद 173]

भक्ति का उदय

पत्नी द्वारा भर्त्सना की जाने वाली घटना अत्यधिक प्रसिद्ध है, उसी के फलस्वरूप गोस्वामी जी विरक्त हो गये थे। 'विनय-पत्रिका' में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं हैं। उपर्युक्त गुरु के आदेश से इतना अवश्य ध्वनित होता है कि गुरु की कृपा से ही राम-भक्ति के प्रति इनकी प्रवृत्ति हुई थी।

जीवन के कटु अनुभव

तुलसीदास का जीवन कटु-तिक्त अनुभवों से पूर्ण था। उनको जीवन का सुख नहीं मिला। माता-पिता ने बचपन में ही छोड़ दिया था, पत्नी ने भी भर्त्सना की तथा मित्रों ने भी पग-पग पर धोखा दिया। इन्होंने विनय पत्रिका में कई बार समस्त सम्बन्धियों को 'विशुद्ध स्वार्थी'—'मतलब के यार'—कहा है :

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक ओचट उलटि न हेरो।
[पद 272]

तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' में कई स्थलों पर अपने जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त किया है :

बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।

× × ×

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि पद पारि पाँहु।

× × ×

दीन सब अंग-हीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर प्रभु-दासी दास कहाइ।

अन्तिम काल

'विनय-पत्रिका' में कई स्थलों पर इस बात के संकेत मिलते हैं कि गोस्वामी जी वृद्धावस्था तक जीवित रहे थे, युवावस्था में की गई गलतियों के प्रति उन्हें गहरी आत्म-ग्लानि थी तथा उनके संगी-साथी उनको छोड़ गये थे :—

कतहुँ नाहि ठाउँ, कहँ जाऊँ कोसलनाथ,
दीन बित्तहीन हौं, बिकल बिनु डेरे।

उनके लिए श्री रघुनाथजी ही सब कुछ थे :

तुलसीदास कासों कहै ? तुमही सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै हो। [पद 270]

उनके दुःखी अन्तर की कलपती हुई भावनाओं का निरीह चित्र कई स्थलों पर उपलब्ध होता है :

राग-द्वेष-ईर्षा-बस रुचि न साधु समीति।
कहे न सुने गुन गन रघुवर के, भई न राम पद-प्रीति।
हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दुसह भवभीति। [पद 234]

× × ×

डासत हो गई बीति दिशा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो। [पद 245]

स्वभाव एवं आचरण

दैन्य, विनम्रता एवं विनय से पूर्ण उनकी उक्तियाँ यह घोषित करती हैं कि तुलसीदास सरल और साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। उनको अपने राम पर भरोसा था और उनका विश्वास-बल पाकर वह पूर्ण अभय हो गये थे :

तुलसीदास रघुवीर करहु बल, सदा अभय काहू न डरै।

गोस्वामीजी का चरित्र जितना पूत और पवित्र था, उतना ही विचार स्वातन्त्र्य उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था :

लोग कहै पोचु सो न सोच न संकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं।

जीवन का ध्येय

'विनय-पत्रिका' में इस प्रकार की पर्याप्त सामग्री पाई जाती है, जिसके द्वारा इनके जीवन के ध्येय सम्बन्धी स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं। उनके जीवन का ध्येय सीधा-सादा था। वह राम की अनन्य भक्ति प्राप्त करना और संसार का कल्याण करना चाहते थे। सन्त-स्वभाव की प्राप्ति उनके जीवन का चरम लक्ष्य था :

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो।

× × ×

परिहरि देह-जनित चिन्ता दुःख-सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो। [पद 172]

× × ×

भव सागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन।
तुलसीदास प्रयास बिनु मिलहिं न दुःख-हरन। [पद 203]

निष्कर्ष—'विनय-पत्रिका' में उपलब्ध अन्तःसाक्ष्य के आधार पर गोस्वामी जी के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित निम्नलिखित बातें हमको विदित होती हैं :

1. तुलसीदास बाल्यावस्था में ही माता-पिता के स्नेह से वंचित हो गये थे और इनका बाल्यकाल बहुत कठिनाई के साथ व्यतीत हुआ था। इन्हें यथासम्भव भीख भी माँगनी पड़ी थी।
2. माता-पिता के अभाव के कारण इनका विधिवत् नामकरण नहीं हो पाया था। वैसे इनका बचपन का नाम रामबोला था। बाद में इनका नाम तुलसीदास हो गया था।

3. इनका बाल्यकाल व्यर्थ व्यतीत हुआ। यह शिक्षा-दीक्षा से वंचित रहे थे।
4. इनका जन्म ब्राह्मण-परिवार में हुआ था।
5. इनका विवाह हुआ था। यह अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक अनुरक्त थे। सम्भवतः अन्य युवतियों के प्रेम-पाश में भी बद्ध हुए हों।
6. गोस्वामीजी दुखी होकर घर से निकल गए थे।
7. इन्होंने खूब पर्यटन किया था। अधिकांश समय काशी, और चित्रकूट में व्यतीत हुआ।
8. इनके गुरु ने इनको राम-भजन का उपदेश दिया था।
9. पत्नी की भर्त्सना तथा गुरु की कृपा से इनकी प्रवृत्ति राम-भक्ति के प्रति हुई थी।
10. गोस्वामीजी को जीवन में अनेक कटु अनुभव हुए थे। उनके बन्धियों और मित्रों ने इनको छोड़ दिया था। एक प्रकार से तो पत्नी ने भी इनको छोड़ दिया था।
11. वृद्धावस्था में इनका शरीर रोग-ग्रस्त एवं जर्जर हो गया था। इन्होंने दीर्घ आयु पाई थी। इन्हें वृद्धावस्था में अपनी अनेक गलतियों के प्रति गहरी आत्म-ग्लानि हुई थी।
12. गोस्वामीजी बड़े ही सरल स्वभाव, साधु-प्रकृति के व्यक्ति थे।
13. गोस्वामीजी के मन में राम का पूरा भरोसा था। राम की कृपा के भरोसे वह सर्वथा अभय हो गये थे।
14. गोस्वामीजी स्वतन्त्र विचार वाले व्यक्ति थे।
15. राम-भक्ति एवं सन्त-स्वभाव की प्राप्ति गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन का ध्येय था।

———

अध्याय 3

विनय-पत्रिका की रचना का प्रयोजन

प्रश्न 7—'विनय-पत्रिका' के मूल में निहित गुरु-प्रेरणा के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रश्न 8—विनय-पत्रिका' की रचना के प्रयोजन पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न 9—'विनय-पत्रिका' शीर्षक के औचित्य का निरूपण कीजिए।

अथवा

प्रश्न 10—'विनय-पत्रिका' लिखने में कवि का क्या उद्देश्य था ? अपने इस उद्देश्य की सिद्धि में गोस्वामीजी को किस सीमा तक सफलता प्राप्त हुई है ?

उत्तर—विनय-पत्रिका का प्रतिपाद्य

'विनय-पत्रिका' कलियुग के विरुद्ध भगवान राम के पास भेजी जाने वाली अरजी है। उनका यह प्रार्थना-पत्र श्री रघुनाथजी द्वारा स्वीकार हो जाता है। तुलसीदास को विश्वास हो जाता है कि कलियुग से उनका पीछा छूट गया। 'विनय-पत्रिका' के अधिकांश पदों में कवि अत्यन्त दुःखी, खिन्न एवं संतप्त दिखाई देता है। इस खिन्नता के कई कारण हैं, जो कलियुग-प्रणीत हैं।

विनय-पत्रिका की रचना किसी स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से की गई है

प्रश्न उठता है कलियुग क्या है ? कलियुग कोई व्यक्ति नहीं, अपितु मूर्त्तवंत पापाचार है। अपने समय की परिस्थितियों का वर्णन करते समय गोस्वामी जी ने उपलक्षणा शैली को अपनाया है। 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में भी उन्होंने कलियुग का बहुत ही सटीक वर्णन किया है। उस वर्णन को पढ़कर प्रत्येक सहृदय एवं साधु व्यक्ति पुकार उठेगा कि इस स्थिति का अन्त शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिए। "परद्रोही, परदार-रत, पर धन, पर अपवाद रत मानव गोस्वामीजी की दृष्टि में राक्षस या खल" है। ऐसे अधम नर सतयुग और त्रेतायुग में होते ही नहीं हैं। द्वापरयुग में कुछ होते हैं परन्तु कलियुग में जबकि धर्म के तीन चरण टूट जाते हैं, ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। इन्हीं व्यक्तियों के प्रभुत्व को देखकर गोस्वामीजी विचलित हो उठे थे और उन्होंने भगवान राम से प्रार्थना की थी कि 'विनाशाय दुष्कृताम्' वह कुछ उपाय करें।

अतः कलियुग के विरुद्ध शिकायत का अर्थ है—भगवान से उद्धार की प्रार्थना करना। तुलसी को यदि केवल अपने कल्याण की चिन्ता होती तो वह भगवान के सम्मुख हाथ फैलाकर मुक्ति-भुक्ति आदि की याचना करते और किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध कुछ कहते। अतः यह समझ लेना चाहिए कि 'विनय-पत्रिका' की रचना का उद्देश्य किसी लौकिक स्वार्थ की सिद्धि नहीं है। यह सब आत्म-कल्याण अथवा आत्म-लाभ के साथ-साथ मानव-मात्र के मनःशोधन एवम् पंकिल दशा सुधार द्वारा कल्याण हेतु सार्वजनीन आर्त्त पुकार है।

कलियुग वस्तुतः अधर्म है। यह कलियुग उनके मन को स्थिर ही नहीं होने देता था, उसके प्रभाववश उनका मन बार-बार चंचल बनकर विषयों के प्रति प्रवृत्त हो जाता था। दूसरी ओर वह समाज में व्याप्त अनाचार, अत्याचार एवं दुराचार को देखकर दुःखी रहते थे। समाज में फैली हुई समस्त बुराइयों को वह समसामयिक परिस्थितियों (जिन्हें उन्होंने कलियुग कहा) का प्रभाव मानते थे। इस प्रकार कलियुग उनके मन को सब तरह असंतुष्ट एवं संतप्त बनाये हुये था। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका मन विषयों से हटकर भगवान के श्री चरणों में लग जाए और समाज में मंगल-विधायिनी सुख-शांति का साम्राज्य हो जाए। अतः 'विनय-पत्रिका' के द्वारा गोस्वामी जी ने अधम के ऊपर धर्म की विजय के लिए श्री रघुनाथजी से प्रार्थना की है।

गोस्वामी जी की खिन्नता के कारण वैयक्तिक एवं समष्टिगत दोनों ही हैं

तुलसीदास के इतने खिन्न एवं दुःखी होने के कारण सामान्यतः निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :

1. वह अनाथ थे। बाल्यकाल में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो जाने के कारण उनके मन में वात्सल्य सम्बन्धी कुण्ठा बन जाना स्वाभाविक है।

2 साथियों और मित्रों की स्वार्थपरता को देखकर वे घबड़ा गए थे। उन्होंने "स्वारथ के साथिन्ह तज्यो" जैसे वाक्य कई स्थलों पर कहे हैं।

3. युवावस्था में अत्यधिक कामासक्त अथवा राम-विमुख रहने की ग्लानि। यथा :

4 मानस मलीन, करतब कलिमल पीन,
जीह हूँ न जप्यो नाम, बक्यो आउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलिहूँ भलो
बाल दशा हूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं।

5. कलि का कोप, जिसके कारण समस्त समाज धर्म से विमुख हो रहा था। अपने समय में फैले हुए धर्म-विरोधी तत्वों को देखकर तो तुलसी मानो कराह उठे थे :

पाहि पाहि राम ! पाहि, रामचन्द-रामचन्द्र,
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन।
दीन बन्धु ! दीनता-दरिद-दाह-दोष-दुख.
दारुन - दुसह - दर - दरप - हरन। [पद 248]

6 उस समय देश में फैले हुए अधर्म या कलि के प्रभाव को हृदयंगम करने के लिए तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को जान लेना आवश्यक है। उन दिनों मुगल शासन ने भारतवर्ष पर आधिपत्य कर रखा था। हिन्दू जाति परवशता एवं विवशता की अजेय चहारदीवारी के भीतर बन्दिनी थी। इतना ही नहीं, अनेक राजपूत राजे अपनी बेटियों को सम्राट के अन्तःपुर को सौंपकर विलासिता का आनंद ले रहे थे और अपने दास जीवन के प्रति आश्वस्त बन गये थे।

राज-कर्मचारी मनमानी कर रहे थे। वे मनमाना टैक्स लगाकर पूरी क्रूरता के साथ उसको वसूल करते थे। दुर्भिक्ष, महामारी आदि का प्रकोप था, परन्तु कोई सुनवाई नहीं थी।

धर्म के क्षेत्र में अन्य-विश्वासों एवं मत-मतान्तरों का जोर था। शैव, शाक्त वैष्णव, नाथपन्थी, हठयोगी, सिद्ध, अघोरी, औघड़ आदि आपस में लड़ रहे थे और उलटी-सीधी बातें करके, तरह-तरह के चमत्कार दिखाकर जनता के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में प्रयत्नशील थे। उधर मुल्ला और मौलवी अपना प्रभुत्व जमाने में लगे हुए थे और धार्मिक जीवन को कटु बना रहे थे। साहित्यकार भी प्रायः अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गया था। कविगण राजदरबारों में रहकर अपने आश्रयदाता के कानों में मकरध्वज की पिचकारियाँ डालकर उन्हें विलास के प्रति प्रवृत्त करने और पुरस्कार प्राप्त करके चले आने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते थे। सारांश यह है कि समाज की दशा सभी दृष्टियों से निराशा-जनक थी तथा हिन्दू-समाज में आत्मगौरव का अभाव हो गया था।

विनय-पत्रिका की रचना का प्रयोजन

गोस्वामीजी इस स्थिति को देखकर विचलित हो गये। इसी दीन-दशा के उद्धार के लिए उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की और इसी उद्देश्य से उन्होंने 'विनय-पत्रिका' की रचना की। 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत उन्होंने जिस दरिद्रता, अधर्मता आदि का वर्णन किया है, वह उपलक्षणा पद्धति पर लिखा या वस्तुतः सम्पूर्ण समाज की दुर्दशा का वर्णन है। 'विनय-पत्रिका' के ये शब्द 'कलि बिलोकि हहरयौं हौं' उनकी लोकपक्षिता के पूर्ण परिचायक हैं। उनकी 'विनय-पत्रिका' परहित-भावना व लोक-हित प्रवृत्ति का सुप्रभ दर्पण है। जो तुलसी परहित-साधन एवं समाज-कल्याण को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हों, वह केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए 'विनय-पत्रिका' जैसे ग्रन्थ के प्रणयन में क्योंकर प्रवृत्त हो सकते थे :

काज कहा नर-तनु धरि सारयो।
पर उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न विचारयो। [पद 202]

विनय-पत्रिका के शीर्षक की उपयुक्तता अथवा सार्थकता

'विनय-पत्रिका' के प्रणयन के प्रयोजन से सम्बन्धित एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। एक बार एक गोहत्यारा चिल्लाकर कह रहा था कि राम के नाम पर कोई मेरे हाथ का भोजन खाकर मुझको गोहत्या के पाप से छुड़ा दे। गोस्वामी जी ने उसकी पुकार सुनी, उन्होंने उसको अपने पास बुलाया और प्रेम-पूर्वक उसके साथ भोजन किया। इस पर काशी के पंडितों ने उनसे कई प्रश्न किये। गोस्वामी जी ने कहा कि वह तो राम का नाम लेते ही मोक्ष पा गया। इस पर राम-नाम की शक्ति की परीक्षा की बात उठ खड़ी हुई। पंडितों ने कहा कि वे राम-नाम की महिमा तब स्वीकार कर सकते हैं जब भगवान विश्वनाथ का नन्दी उस गोहत्यारे के हाथ का भोजन स्वीकार कर ले। कहते हैं कि पत्थर के उस नन्दी ने सबके देखते-देखते उसके हाथ का भोजन खा लिया। इस पर अनेक व्यक्ति रामनाम के प्रशंसक एवं राम के भक्त हो गये। लोगों में भक्ति-भाव के प्रति प्रवृत्ति देखकर कलियुग कुपित हो गया और उसने सबको, विशेषकर इसके मूलकारण तुलसीदासजी को सताना प्रारम्भ कर दिया। अत्यधिक सताने पर तुलसीदासजी ने श्री हनुमानजी से उद्धार की प्रार्थना की। उन्होंने परामर्श दिया कि उनको श्रीरामचन्द्रजी के दरबार

में प्रार्थना करनी चाहिये, क्योंकि वे ही कलियुग को दण्डित करने में समर्थ हैं। हनुमानजी के इस सुझाव के अनुसार गोस्वामी जी ने यह 'विनय-पत्रिका' लिखी।

'विनय-पत्रिका' की रचना के मूल में चाहे अन्त:प्रेरणा थी अथवा हनुमान जी की आज्ञा थी, बात एक ही है। वह भगवान की सेवा में भेजा जाने वाला सर्वजन की वेदना का चिट्ठा है और इसके द्वारा उस वेदना के निवारण के लिये प्रभु से आर्त्त विनती की गयी है। अतः इसका नाम 'विनय-पत्रिका' सर्वथा उपयुक्त एव सार्थक है।

'विनय-पत्रिका' में कवि को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है

गोस्वामी तुलसीदास एक सच्चे भक्त थे। एक सच्चे भक्त की भाँति वह भगवान द्वारा निर्मित्त प्रत्येक जीव की कल्याण-कामना प्रति क्षण किया करते थे। मानव-मात्र का मनः शोधन और समाज में मंगल का विधान उनके जीवन-दर्शन एवं सुख स्वप्न थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'राम-चरितमानस' की रचना की और इसी से प्रेरित होकर वह 'विनय-पत्रिका' के प्रणयन में प्रवृत्त हुए। इस सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन दृष्टव्य है—"**विनय-पत्रिका में कलि की करालता से उत्पन्न जिस व्याकुलता या** कातरता का उन्होंने वर्णन किया है, वह केवल उन्हीं को नहीं है, समस्त लोक को है। इसी प्रकार जिस दीनता, **निरवलम्बता, दोष-पूर्ण या पाप-मग्नता को** भावना की उन्होंने व्यंजना की है, वह भी भक्त-मात्र के हृदय की सामान्य वृत्ति है। वह और सब भक्तों की अनुभूति से अविच्छिन्न नहीं, उसमें कई व्यक्तिगत वैलक्षण्य नहीं।"

'रामचरितमानस' की भाँति 'विनय-पत्रिका' में भी उन्होंने उस समाज का वर्णन किया है जो धर्म-विमुख व्यक्तियों द्वारा उत्पीड़ित है और पापाचार के भार के कारण कराह रहा है। 'रामचरितमानस' की समाप्ति पर उन्हें विश्वास हो जाता है कि उनके राम ने उनकी बात सुन ली है और अब भारतवर्ष में 'रामराज्य' स्थापित हो जायगा तथा देश-वासियों के दिन फिर जाँयगे। इसी कारण वह 'पायो परम विश्राम **राम समान प्रभु नहीं कहूँ**', लिखकर चुप हो जाते हैं। 'विनय-पत्रिका की स्थिति भी ठीक नहीं है। कल्याण के हेतु सर्वजनीय आर्त्त पुकार करते हुये उनको विश्वास हो जाता है कि अब भारत-भाग्य का उदय अवश्य होगा और वह 'बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है' लिखकर ग्रन्थ का उपसंहार कर देते हैं। "मुदित माथ नावत" कथन इस बात का द्योतक है कि कवि अपनी साधना के फल से सन्तुष्ट है। अतः हम कह सकते हैं कि 'विनय-पत्रिका' में कवि को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाती है।

———

अध्याय 4
विनय-पत्रिका की विषयवस्तु

प्रश्न 11. विनय-पत्रिका के पदों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिये।

अथवा

प्रश्न 12. 'विनय-पत्रिका' के वर्ण्य-विषय क्या हैं? संक्षेप में प्रत्येक पर विचार कीजिये।

उत्तर—विनय-पत्रिका शृंखलाबद्ध विनियोक्तियों का कोष है।

जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है, 'विनय-पत्रिका' कवि की विनयोक्तियों का कोष है, जिसको उसने अपने आराध्य श्रीरामजी के चरणों में समर्पित किया है। अब हम कह सकते हैं कि 'विनय-पत्रिका' का वर्ण्य-विषय अपने आराध्य राम के प्रति 'विनय' का निवेदन मात्र है। यह एक दुखित कवि के दुखी हृदय की करुण पुकार है जो शृंखला-बद्ध रूप मे प्रस्तुत की गई है। 'विनय-पत्रिका, एक ऐसे व्यक्ति मानव की भावनाओं का संग्रह है जो अपने प्रभु से कुछ नहीं छिपाती है।

विनय-पत्रिका के वर्ण्य-विषय

'विनय-पत्रिका' के पदों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर देखते हैं कि उसमें कवि ने अपनी विनय भावना को विभिन्न विषयों के माध्यमों से व्यक्त किया है। इन वर्ण्य विषयों को हम निम्नलिखित प्रकार के वर्गों में विभक्त कर सकते हैं:

1. स्तुति।
2. धार्मिक स्थानों का परिचय।
3. सांसारिक जीवन की असारता का वर्णन।
4. आत्म-ग्लानि का वर्णन।
5. आत्मरूप को समझने के लिए आत्म अभिव्यक्ति।
6. आत्म उपदेश।
7. राम-नाम का माहात्म्य वर्णन।
8. मनोराज्य-राम की शरण में प्राप्त आनंदानुभव का वर्णन।

अब हम प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत किए गए वर्णन पर संक्षेप मे विचार करते हैं।

स्तुति

गोस्वामी जी ने आरम्भ में हिन्दू धर्म के मान्य प्रमुख देवी-देवताओं की परिचयात्मक स्तुति की है। उनका संक्षिप्त परिचय-सा देते हुये उनके प्रति अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की है। यह स्तुति-क्रम गणेशजी से आरम्भ होता है और अन्त में श्रीरामचन्द्र तक चलता है।

सर्वप्रथम श्री गणेश जी की स्तुति करते हुये कवि पहले गणेशजी की वंशावली बताता हुआ उनका परिचय देता है, फिर उनके गुणों का वर्णन करता है और तत्पश्चात् उनसे राम-भक्ति की याचना करता है। यही क्रम अन्य देवी-देवताओं

की स्तुति में चलता है—1 गुण-वर्णन—जिसका निर्वाह कथाओं और रूपकों द्वारा होता है, 2. रूप वर्णन तथा 3. राम-भक्ति के वर-याचना, जैसे—मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहि राम सिय मानस मोरे ॥ [पद 2]

श्री गणेशजी के पश्चात् क्रमशः सूर्य, शिव, दुर्गा, गंगा, यमुना, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता और फिर भगवान के विभिन्न रूपों में राम की स्तुति मिलती है।

धार्मिक स्थानों का परिचय

'विनय पत्रिका' में गोस्वामीजी ने दो धार्मिक स्थानों— चित्रकूट और काशी का वर्णन किया है। इनकी चर्चा तो उन्होंने कई पदों में की है, परन्तु इनका विशद वर्णन केवल आरम्भ में स्तुति के पदों मे ही किया है। इन दोनों तीर्थ-स्थानों के प्रभाव एवं माहात्म्य का मार्मिक वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने यह भी लिख दिया है कि समय कलियुग का है।

काशी का वर्णन करते हुये गोस्वामीजी ने कामधेनु का रूपक प्रस्तुत किया है। इसका उपसंहार करते हुये उन्होंने लिखा है कि पुराण कहते हैं कि "केशव ने शिल्पकला के पूर्ण ज्ञान की सहायता से अपने ही हाथों से इसे बनाया था।[1]

इन दो पुनीत स्थानों का सुव्यवस्थित एवं सुन्दर वर्णन करते हुये गोस्वामी जी ने इस बात का भी निर्देश कर दिया है कि वह अपने वृद्ध जीवन के अधिकांश समय तक इन दो स्थानों में रहे थे।

सांसारिक जीवन की असारता का वर्णन

तुलसीदास ने अनेक पदों में सांसरिक जीवन की असारता का वर्णन किया है। उनके विचार से संसार मृग-जल के समान मिथ्या एवं अस्तित्वहीन है :

कहि न जाय मृग वारि सत्य, भ्रम से दुख होइ बिसेखे। [पद 151]

गोस्वामीजी ने तुलसीदास सब विधि प्रपंच जग, (पद 121) कह कर अपना मत सर्वथा स्पष्ट कर दिया है।

गोस्वामीजी ने जग को कहीं रात्रि का रूपक दिया है और कहीं शरीर तथा घर की ममता को घन मध्य क्षण मात्र चमक कर विलुप्त हो जाने वाली बिजली माना है।

जागु-जागु जीव जग ! जोहै जग जामिनी।
देह-गेह-नेह जाति जैसे घन-दामिनी ॥

वह संसार को अनेक प्रकार के दुःखों का घर बताते हैं :

अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी।

आत्म-ग्लानि का वर्णन

संसार के मिथ्या स्वरूप एवं उसकी असारता समझ लेने के बाद गोस्वामी जी जीवन में किये गये अपने कृत्यों की व्यर्थता पर पश्चात्ताप करते हैं :

कछु ह्वै न आई गयो जनम जाय।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय।

गोस्वामीजी ने अपने कृत्यो के प्रति आत्म-ग्लानि की अभिव्यक्ति 'विनय-पत्रिका' में जी भर कर की है। वह अपने आपको सब प्रकार से हेय समझने लगते हैं। आत्म-ग्लानि की जैसी व्यंजना तुलसी के पदों में मिलती है, वैसी बहुत कम कवियों मे दिखाई देती है :

काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि।
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि।
× × ×
एतेहुं पर तुम्हरो कहावत, लाज अंचई घोरि। [पद 158]

अपना उद्धार न होने के लिये वह स्वयं अपने आपको दोषी ठहराते हैं---हैं, प्रभु मेरोई सब दोसु, (159)। राम तो परम कृपालु हैं, वह तो कभी उपेक्षा कर ही नहीं सकते हैं।

'आत्म-ग्लानि' के अन्तर्गत दैन्य भावना की अभिव्यक्ति सबसे अधिक महत्व-पूर्ण अंग है। इसके सहारे तुलसी ने अपने आपको श्रीरामजी के चरणों में डाल दिया और वह यहाँ तक कहने को तैयार हो गये :

दीजे मोको जम जातना नई
राम ! तुमसे सुचि सहृद साहिबहिं मैं सठ पोठि दई।
× × ×
उदर भरौं किंकर कहाइ बेच्यो विषयन हाथ हियो है।
मोसे बंचक को कृपालु छल छांड़ि कै छोह कियो है। [पद 171]

इन पदों में कवि का वाक्-चातुर्य एवं वाग्वैदग्ध्य देखते ही बनते है :

लोक कहै राम को गुलाम हौ कहावौं।
ऐतो बड़ो अपराध भो, न मन बावौं।

अन्तत: जब वह राम के द्वार पर अकड़कर बैठ जाते है, तब उनका वाक्-चातुर्य देखते ही बनता है :

हौं मचला लै छाड़िहौं जहि लागि अरयो हौं। [पद 267]

आत्म-स्वरूप को समझाने के लिए आत्माभिव्यक्ति

गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में यद्यपि अपने जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्रत्यक्षत: कुछ नहीं लिखा है, तथापि आत्म-लोचन करते हुए उन्होंने अपने मनोभावों एवं अपनी मनोदशाओ के सम्बन्ध मे बहुत कुछ कह दिया है। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी बाल्यावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था की झाँकी भी प्रस्तुत कर दी है। माता-पिता ने उनको बचपन में ही त्याग दिया और अनाथ हो जाने से उन्हें भीख माँग कर अपना पेट भरना पड़ा था :

जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु विधिहूँ तज्यो अव डेरे। [पद 227]

एवं—"तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु-पिता हूँ" [पद 275]। तथा "द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाउँ।" [पद 275]। उनकी युवावस्था भोग-विलास में व्यतीत हुई और बुढ़ापे में उन्हें रोगो ने घेर लिया। इस प्रकार जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो गया :

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जीवन जुवतिन लियो जीति।
रोग-वियोग-सोग-स्रम-संकुल, बड़ि बय वृथहिं व्यतीति। [पद 234]

इतना ही नहीं, वह जीवन भर इधर-उधर भटकते रहे और उन्होंने राम को सिर नहीं नवाया :

कहा न कियों कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम रावरे बिन भये जन जनमि, जनमि, जग दुख दसहुँ दिसि पायो।

'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट उल्लेख प्राप्त हो जाता है कि वह कलि की कुचालों को देखकर चित्रकूट चले गये थे। [पद 263]

'विनय-पत्रिका' में यह भी स्पष्ट संकेत है कि 'विनय-पत्रिका' की रचना इन्होंने वृद्धावस्था में की थी :

तुलसीदास अपनाइए कीजै न ढील अब जीवन अवधि अति नेरे। [पद 273]

'विनय-पत्रिका' तुलसी के जीवन-काल में ही समाप्त हो गयी थी—"मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।" [पद 279]

आत्म-उपदेश

तुलसीदास आत्म-चिन्तन द्वारा यह समझ लेते हैं कि जीव जगत् में आते ही विषय-वासनाओं के जाल में अपने आपको फँसा देता है और फिर अनेकों जन्मों तक नाना योनियों में भटकता हुआ नाना प्रकार की यातनाएँ भोगता रहता है। अतः वह बार-बार अपने मन की भर्त्सना करते हैं, तथा उसको समझाकर राम-भक्ति में लगने को कहते हैं। इस प्रकार मन के प्रति उद्बोधन 'विनय-पत्रिका' के अनेक पदों में पाया जाता है :

मन इतनोई या तनु को परम फलु।
सब अंग सुभग बिन्दु माधव छबि, तजि सुभाव, अवलोक एक पलु।
[पद 63]

राम राम रटु, राम, राम रटु, राम राम जपु जीहा। [पद 65]

'विनय-पत्रिका' इस प्रकार के आत्म-उद्बोधन के पदों से भरी पड़ी है। उनकी तो स्पष्ट धारणा थी कि :

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।
× × ×
पायो नाम चारु चिन्तामनि, उर कर ते न खसैहौं। [पद 105]

बात असली यह है कि गोस्वामीजी अपने मन को उपदेश देने के बहाने समस्त संसार को उपदेश देते हैं। उनके उपदेश में उपलक्षणा-पद्धति का समावेश है। एक आलोचक के शब्दों में, "**तुलसी ने अपने निजी अनुभवों को बताते हुए आत्म-निरीक्षण और आत्म-प्रदर्शन का नाटक खेला है।**"

राम-नाम के माहात्म्य का वर्णन

अपने मन को समझाने के बाद गोस्वामीजी ने राम-नाम के माहात्म्य का जी खोलकर वर्णन किया है। इन्होंने राम-नाम के प्रभाव का भी वर्णन किया है :

पतित-पावन राम-नाम सो न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो। [पद 69]

इसी के साथ इन्होंने भगवान राम की दयालुता का भी वर्णन किया है :

बेचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम रे।
सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। [पद 71]

गोस्वामीजी के लिए राम-नाम सर्वोपरि है। कलियुग में राम-नाम कल्याण रूपी फलों से लदा हुआ वृक्ष है :

मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो। [पद 226]

गोस्वामीजी के विचार से कलियुग में कल्याणार्थ विधाता ने राम-नाम के

अतिरिक्त अन्य किसी गति का विधान ही नहीं किया है। राम-नाम तुलसी के लिये सर्वस्व ही है। माता, पिता, स्वामी, सखा, मित्र, पुत्र सब कुछ। देखिए :

नाम सो न मातु, पितु, मीत, हित, बन्धु, गुरु
साहिब सुधी, सुसील सुधाकरु है। [पद 225]

राम का नाम कलि-भय का विदारण करके परम विश्राम को देने वाला है, क्योंकि—

बैठे नाम काम तरु-तर कौन घोर धन धाम को। [पद 155

मनोराज्य अर्थात् राम की शरण में प्राप्त आनन्दानुभव का वर्णन

राम-नाम की महिमा का वर्णन करने के पश्चात् तुलसीदास राम की शरण की प्राप्ति और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्दानुभव का वर्णन बड़े ही मनोयोग के साथ करते हैं। राम की शरण में अपने आप को छोड़ कर उनका भक्त हृदय आनन्द-संगीत की सुधा-पान करता है। उस आनन्द महोत्सव के दिव्य संगीत का उद्घाटन तुलसी ने ग्रन्थ के अन्तिम पदों में किया है :—

तुम अपनायौ तबहि जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
× × ×
तुलसिदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनन्द उमँगि उर भरिहै।
[पद 268]

इससे अधिक आनन्ददायक मनाराज्य और क्या हो सकता है ?

बिहँसि राम कह्यो, सत्य हैं सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।
[पद 279]

निष्कर्ष यह है कि तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' में राम-भक्ति की प्रतिष्ठा के हेतु विविध वर्ण्य विषयों का चयन किया है और उनमें विविधता होते हुये भी विचार की एकता पाई जाती है। पदों में एक क्रम है, जिसके द्वारा राम-भक्ति की दिशा में उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। समस्त वर्णन में आत्म-विकास का अविच्छिन्न सूत्र अनुस्यूत दिखाई देता है

प्रश्न 13—कुछ विद्वान 'विनय-पत्रिका' को वैष्णव-भक्ति का सांगोपांग ग्रंथ कहते हैं। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? पक्ष या विपक्ष में तर्क सहित अपने मत की प्रतिष्ठा कीजिये।

अथवा

प्रश्न 14—'विनय-पत्रिका' एक प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य है।" इस कथन की समीक्षा कीजिये।

अथवा

प्रश्न 15—'विनय-पत्रिका' एक क्रमबद्ध काव्य-रचना है।"—इस कथन की समीक्षा कीजिये।

अथवा

प्रश्न 16—सिद्ध कीजिये कि 'विनय-पत्रिका' यथाक्रम से रचा हुआ विनय का एक महत्वपूर्ण काव्य है।

अथवा

प्रश्न 17—'विनय-पत्रिका' यथाक्रम से रचा हुआ काव्य ग्रंथ है और इससे

बढ़कर ग्रंथकर्ता ने किसी दूसरे ग्रंथ में अपनी कवित्व शक्ति नहीं दिखलाई है।

आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त कथन की पुष्टि 'विनय-पत्रिका' में उपयुक्त उदाहरण देते हुये कीजिये।

उत्तर—विनय-पत्रिका कलियुग के विरुद्ध भगवान श्रीराम के दरबार में की गई पुकार है।

कलि की सामाजिक परिस्थितियों का सामूहिक नाम 'कलियुग' है। इसमें मानव-मात्र के कल्याण के हेतु भगवान से प्रार्थना की गई है। इसके पद गीति-काव्य की शैली की पद्धति पर रचे गये हैं और इस ग्रन्थ को सहज ही मुक्तक काव्य कहा जा सकता है। परन्तु इसके साथ-साथ इस ग्रन्थ के पदों में एक क्रमबद्धता भी दिखाई देती है। तब प्रश्न उठता है कि 'विनय-पत्रिका' किस प्रकार का काव्य है ? इस सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'विनय-पत्रिका' में साधारण रूप से देखने में पद क्रम-हीन जान पड़ते हैं, पर वास्तव में उनमें एक प्रवाह, एक क्रम है। 'विनय-पत्रिका' एक पूर्ण रचना है, जिसकी रूपरेखा ग्रन्थ के रूप में हुई है।"

विनय-पत्रिका एक क्रमबद्ध रचना है

वियोगी हरि ने 'विनय-पत्रिका' की टीका के वक्तव्य के अन्तर्गत लिखा है कि 'स्फुट-काव्य' होते हुये भी 'विनय-पत्रिका' का क्रम बड़ा ही सुन्दर है। यह हो सकता है कि कुछ पद समय-समय पर बनाये गये हों, किन्तु इसकी रचना यथा-क्रम ही हुई है। राजा-महाराजा के पास कोई बाला-बाला अर्जी नहीं भेजता। पहले दरबार के मुसाहिबों को मिलाना पड़ता है, तब कहीं पैठ होती है। इस बात को ध्यान में रखकर गोसाईं जी ने पहले देवी-देवताओं को मनाया है, तब कहीं हुजूर में अर्जी पेश की है। डॉ० विनय कुमार ने भी इसके बारे में लिखा है कि "**यह रचना सम्यक् ग्रंथ के रूप में ज्ञात होती है, क्योंकि इसमें मंगलाचरण है और क्रम से अन्य देवताओं की प्रार्थना है। इसके बाद राम की सेवा में 'विनय-पत्रिका' पहुँचाकर उसकी स्वीकृति ले ली गयी है।**"

यह कलियुग के खिलाफ शिकायत है जो भगवान राम के सम्मुख उपस्थित होने के पूर्व सात द्वारों में प्रविष्ट होती है। प्रत्येक द्वार पर एक द्वारपाल विराजमान है। यथा—गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा, गंगा, यमुना और हनुमान। प्रत्येक द्वारपाल की स्तुति में एक पद कहा गया है। शिव की स्तुति में 12 पद हैं। एक द्वारपाल के नाते तथा 11 एकादश रुद्र के नाते। छठवें द्वार में प्रविष्ट होते ही दो वन दिखाई देते हैं—(1) आनन्द वन, यह वन दाहिनी ओर है। इसके अधिष्ठाता शंकर हैं। इसे मुक्ति-क्षेत्र काशी कहते हैं। (2) चित्रवन, यह बाईं ओर है। इसके अधिष्ठाता हनुमान हैं। यह भगवान की नित्यलीला का प्रमोद कानन है। इसके पश्चात् 'विनय-पत्रिका' 7वें द्वार में प्रविष्ट होती है। हनुमानजी की स्तुति में 12 पद हैं—1 पद द्वारपाल के नाते तथा 11 पद एकदश रुद्र के नाते। 7वें द्वार में होकर राजभवन में पहुँचते हैं। अन्त में पद 279 अपनी विनय-पत्रिका की स्वीकृति की सूचना देकर ग्रन्थ का उपसंहार कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि विनय-पत्रिका एक शृंखलाबद्ध ग्रन्थ है। इसमें कथा न होते हुये भी प्रबन्धात्मकता है, निर्वाह

और विचारों की सुनिश्चित शृंखला है। पद स्फुट अवश्य हैं, परन्तु उनके भावों के साम्य ने उन्हें आपस में बाँध रखा है।

'विनय-पत्रिका' वैष्णव भक्ति-पद्धति का सांगोपांग ग्रंथ है

तुलसीदास स्मार्त्त वैष्णव थे अतः स्मार्त्त वैष्णवों की परम्परानुसार पंचदेव की उपासना उन्हें मान्य थी। इसी के अनुसार उन्होंने पंचदेवों—गणेश, विष्णु, शिव, सूर्य और दुर्गा की स्तुति में 'विनय-पत्रिका' का उपक्रम किया। विष्णु रूप राम की स्तुति तो पूरे ग्रन्थ में है।

'विनय-पत्रिका' वैष्णव भक्ति के सप्त सोपानों का निरूपण है

वैष्णव मतानुसार भक्ति की सात भूमिकाएँ मानी जाती हैं, अर्थात् सात सोपानों को पार करने के पश्चात्, सात उदात्त गुणों का सम्पादन करने के पश्चात् साधक को प्रभु का सान्निध्य प्राप्त है। विदेशी भक्त इन्हें 'Seven Portals' कहते हैं चाहे तो हम कह सकते हैं कि योग-साधना में भी सात चक्रों की चर्चा है। वे सप्त सोपान अथवा भूमिकाएँ और 'विनय-पत्रिका' में इनका निर्वाह निम्नलिखित रूप में किया गया है।

1. दीनता—लघुत्व का अनुभव तथा समस्त कष्टों एवं असफलताओं के लिये स्वयं अपने को उत्तरदायी मानना। जैसे—"मैं हरि साधन करइ न जानी" (पद 122) तथा देखें अन्य पद 92, 148, 159, 189।

2 मान-मर्षता—अहंकार का पूर्ण विध्वंस तथा केवल इष्टदेव की कृपा पर अवलम्बित रहना। पुष्टमार्गीय भक्ति की अभिव्यक्ति करने वाले पद इसी के अंतर्गत आते हैं।

> नाहिन नरक परत मो कहँ डर, ज्यपि हौं अति हारो।
> यह बड़ त्रास दास तुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो। [पद 94]

और भी देखें पद 95, 96 इत्यादि :—

> बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।
> मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।

3. भय-दर्शन—जीव को संसार की निस्सारता आदि दिखाकर राम के सम्मुख करना :—

> जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
> धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।
> राम-नाम छांड़ि जो भरोसो करै और रे।
> तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूरि कौर रे। [पद 65

4. भर्त्सना—मन को अपने किये हुये कृत्यों के लिये डाँटना :—

> मन पछतैहै अवसर बीते।

"दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु हों ते।" [पद 198

और भी देखें पद 199, 200, 201 इत्यादि :

5. आश्वासन—इष्टदेव की शरणागत-वत्सलता, कृपालुता आदि गुणों में विश्वास रखकर मन को धैर्य बँधाना। अहिल्या, अजामिल, गणिका, शबरी, बाल्मीकि, गीधि, गुह, निषाद, सुग्रीव, विभीषण आदि के उद्धार की चर्चा करने वाले पद इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं :—

बिरद गरीब निवाज राम को ।

× × ×

गनिका, कोल, किरात आदि कवि इन्हते अधिक बाम को ।
बाजिमेध कब कियो अजामिल गज गायो कब साम को ।
छली मलीन हीन सब ही अंग, तुलसी सो छीन छाम को ।
नाम-नरेश-प्रताप प्रबल जग, जुग जुग चालत चाम को । [पद 99]

और भी देखें पद 69, 91, 98, 100, 130, 137 आदि ।

6. **मनोराज्य**—शरणागति-प्राप्ति की स्थिति में भावी सुख का कल्पना करना, सुख के बड़े-बड़े मनसूबे बाँधना और उनकी पूर्ति के लिए प्रभु से प्रार्थना करना :—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।

× × ×

परिहरि देह जनित चिन्ता दुख-सुख समबुद्धि गहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भक्त लहौंगो । [पद 172]

अन्य पद भी देखें—137, 221, 218, 230 269 तथा 270 । अन्तिम पद में मनोराज्य की चरम अभिव्यक्ति दिखाई देती है ।

7. **विचारणा**—विचारणा के अन्तर्गत दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन तथा ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता और सरलता की अभिव्यंजना कई पदों में मिलती हैं । देखें पद 111, 116, 123, 126, 161, 189, तथा 221 ।

उदाहरणार्थ

केसव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं, मन रहिये ।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै । [पद 111]

× × ×

माधव, मोह-पास क्यों टूटै ।
बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थ न छूटै ॥ [पद 111]

× × ×

तरु-कोटर महँ बस बिहँग तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय विचार हीन मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे ।

X × ×

तुलसीदास हरि गुरु करुना बिनु, विमल, विवेक न होई ।
बिनु विवेक संसार-घोर-निधि, पार न पावै कोई । (पद 115)

'विनय-पत्रिका' में शरणागति के नियमों का क्रमबद्ध निर्वाह है

वैष्णव मत के अनुसार शरणागति के छः नियम माने जाते हैं । तुलसीकृत 'विनय पत्रिका' में इन नियमों का निर्वाह भी पाया जाता है :

1. **अनुकूल का संकल्प**—भगवान के द्वारा अथवा उनके भक्तों द्वारा बताए हुये मार्ग पर चलने का निश्चय अथवा अनुकूल गुणों को धारण करने का संकल्प, जिससे इष्टदेव रीझ कर कृपा करें :

अब लौं नसानी अब न नसैहों।

× ×

परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहों।
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहों। (पद 175)

और भी देखें पद सं० 13, 14, 22, 63, 104. 121, 204, 206।

2. **प्रतिकूल गुणों का त्याग**—कुमार्ग पर ले जाने वाले अथवा राम से विमुख कराने वाले अवगुणो का त्याग करने का संकल्प (उदाहरणार्थ देखें पद 174, 198, 199)

इष्टदेव द्वारा रहित होने का आश्वासन—(उदाहरणार्थ देखें पद सं० 130, 152, 164 173, 213 तथा 239)।

4. **गोप्तृप्त का वर्णन**—प्रभु के गुणों का स्मरण करना (उदाहरणार्थ देखें पद 99, 137, 144, 180 तथा 230)।

5. **आत्म-निक्षेप**—प्रभु के चरणों में अर्पण करने का भाव। यह भाव आद्योपान्त व्याप्त है।

6. **कार्पण्य** - दैन्य से तात्पर्य है। अपने दोषों एवं अवगुणों को उठा-उठा कर दिखाना। (उदाहरणार्थ देखें पद सं० 143, 185, 234)।

निष्कर्ष--हम देखते हैं कि 'विनय-पत्रिका' के पद-क्रम विशेष के अन्तर्गत रचित हैं। एक भी पद ऐसा नहीं है जो निरुद्देश्य रचित हो अथवा भरती का हो। 'विनय-पत्रिका' में वस्तुतः वैष्णव भक्ति का सांगोपांग निरूपण किया गया है। साथ ही प्रत्येक पद मुक्तक काव्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। अतः हम निस्संकोच कह सकते हैं कि 'विनय-पत्रिका' एक प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य-ग्रन्थ है।

———

अध्याय 5

विनय-पत्रिका में भक्ति का स्वरूप

प्रश्न 18—'विनय-पत्रिका' के आधार पर गोस्वामीजी की भक्ति-पद्धति का निरूपण कीजिये।

अथवा

प्रश्न 19—'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत निरूपित भक्ति-पद्धति का विवेचन कीजिये और सिद्ध कीजिये कि भक्ति की पूर्ण पद्धति इसके भीतर दिखाई देती है।

अथवा

प्रश्न 20—" 'विनय-पत्रिका' भक्तों के हृदय का सर्वस्व है और भक्ति की पूर्ण पद्धति इसके अन्दर दिखाई गई है।"—इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? युक्तियुक्त विवेचना दीजिए।

अथवा

प्रश्न 21—" 'विनय-पत्रिका' भक्ति-रस के नाना स्वादों से भरी हुई है।" आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न 22—" 'विनय-पत्रिका' आराध्य के प्रति तुलसी के निश्छल आत्म-समर्पण की गाथा है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न 23—" 'विनय-पत्रिका' में भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। भक्त-हृदय के जैसे भावपूर्ण उद्‌गार इसमें हैं, वैसे अन्य कहीं भी नहीं हैं।"—इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न 24—"भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व तथा अपने दैन्य का अनुभव अत्यन्त आवश्यक है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभवों के अत्यन्त मार्मिक तथा पवित्र उद्‌गार निकले हैं।"—'विनय-पत्रिका' के आधार पर इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' भक्ति-साहित्य का अनमोल ग्रन्थ है।

वियोगी हरि लिखित 'विनय-पत्रिका' की हरितोषिणी टीका के 'परिचय' के अन्तर्गत आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसा 'विनय-पत्रिका' में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं।······आलम्बन की महत्व भावना से प्रेरित दैन्य के अतिरिक्त भक्ति के और जितने अंग हैं—भक्ति के कारण अन्तःकरण को जो और-और शुभ वृत्तियां प्राप्त होती हैं—सबकी अभिव्यंजना 'विनय-पत्रिका' के भीतर हम पा सकते हैं······चरम महत्व के इस भव्य मनुष्य-

ग्राह्य रूप के सम्मुख भाव-विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो-जो भाव-तरंगें उठती हैं उन्हीं की माला यह 'विनय-पत्रिका' है······सारांश यह है कि गोस्वामीजी की यह 'विनय-पत्रिका' भक्ति-रस के नाना स्वादों से भरी हुई है; हिन्दी-साहित्य में यह एक अनमोल रत्न है।''

शास्त्रीय दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' भक्ति का सांगोपांग ग्रंथ है

शास्त्रीय दृष्टि सें भी 'विनय-पत्रिका' वैष्णव भक्ति का एक सांगोपांग ग्रन्थ है। इसमें वैष्णव भक्ति की सातों भूमिकाओं (दीनता, मान, मर्षता, भय-दर्शन. भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य तथा विचारणा) का निर्वाह पाया जाता है, इतना ही नहीं, इसमें वैष्णव भक्ति-ग्रन्थों में वर्णित शरणागति के छहों नियमों (अनकूल का संकल्प, प्रतिकूल गुणों का त्याग, इष्टदेव द्वारा रक्षित होने का आश्वासन, आत्मनिक्षेप तथा कार्पण्य) का पूर्ण विधान है।

विनय पत्रिका में भक्ति-भावना का पूर्ण उत्कर्ष पाया जाता है

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है, तथा धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है। अतः भक्ति के पूर्ण प्रकर्ष के लिये इष्टदेव में अनन्त-सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत हम को श्रीराम के व्यक्तित्व में उक्त तीनों गुणों की पूर्ण प्रतिष्ठा दिखाई देती है। आरंभ के स्रोतों में अथवा स्तुति सम्बन्धी पदों में हमको राम का अनन्त सौन्दर्य-मण्डित स्वरूप दिखाई देता है। इसके बाद उनके दीन-उद्धारक एवं पतित-पावन स्वरूप में हमें उनकी अनन्त शक्ति के दर्शन होते हैं। उनके इस स्वरूप की प्रतिष्ठा में जहाँ चपलातिशयोक्ति अलंकार का चमत्कार समाविष्ट हो गया है, वहाँ उनके नाम की अमोघ शक्ति का दर्शन करके जीव कृत-कृत्य हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रघुनाथजी के क्षमाशील एवं उदार स्वभाव का वर्णन अनेक पदों में किया है। इन पदों में हमें उनके अनन्त शील के दर्शन होते हैं, जब वे बड़े से बड़े पापी के पाप को भी विस्मरण करते हुये दिखाई देते हैं। अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शील से युक्त इष्टदेव की प्रतिष्ठा करके तुलसी मानो निश्चिन्त होते हैं उनका स्पष्ट मत है कि शील-सदाचार की ऐसी प्रतिभा का दर्शन करके मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय अवश्य ही द्रवीभूत होगा :—

> सुनि सीतापति सील सुभाउ।
> मोद न मन, तन पुलक नयन जल सों नर खेहर खाउ। [पद 100]

जिसको ऐसे सीतापति प्रिय नहीं हैं, उनको धर्म प्रिय नहीं है और धर्म-विरोधी से भक्त का कोई सम्बन्ध नहीं—

> जाके प्रिय न राम वैदेही।
> सो छाँड़िये कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
> × × ×
> तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
> जासों होय सनेह राम-पद, एतो-मतो हमारो॥ [पद 74]

जब शील के इस मनोहर रूप की ओर जीव आकर्षित हो जाता है और अपनी वृत्तियों को उनके मेल में देखना चाहता है तब जाकर वह भक्ति का अधिकारी

होता है। तुलसी इस भक्ति के अधिकारी बनना चाहते हैं। उनका 'मनोरंजन' उनके भक्त-हृदय का प्रतिविम्ब है :—

कबहुँक हौ यहि रहनि रहौंगो ?
× × ×
परिहरि देह जनित चिंता दुःख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यही पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो ।। [पद 172]

शील-साधना की इस उच्च भूमि में वैराग्य अपने आप मिला हुआ है। भगवान का प्रणत-रक्षक धर्म ही भागवतों का एकमात्र अवलम्ब है।

दैन्य तुलसी का बल है

महत्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति भक्ति का मूल मन्त्र है। महत्व की स्वीकृति लघुत्व की भावना दैन्य की अनुभूति को जन्म देती है। यह दैन्य भक्तों का सर्वस्व और एकमात्र सम्बल है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक है।...... दैन्य भक्तों का बहुत बड़ा बल है। भक्त को जिस प्रकार प्रभु के महत्व का वर्णन करने में आनन्द आता है, उसी प्रकार अपना लघुत्व वर्णन करने में भी" :

राम सों बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ?
× × ×
तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुँज हारी। इत्यादि [पद 79]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "ऐसी उच्च मनोभूमि की प्राप्ति, जिसमें अपने दोषों को झुक-झुक कर देखने की ही नहीं, उठा-उठा कर दिखाने की भी प्रवृति होती है।......लोक की सामान्य प्रवृत्ति तो इसके विपरीत होती है, जिसे अपनी ही मानकर गोसाईं जी कहते हैं।"

जानत हूँ निज पाप जलधि जिय, जल-सीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि सम रजतैं निबरौं।

चरम महत्व के इस भव्य मनुष्य-ग्राह्य के रूप के सम्मुख भाव-विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो-जो भाव तरंगें उठती हैं, उन्हीं का माला 'विनय-पत्रिका' है। महत्व के नाना रूप और इन भाव-तरंगों की स्थिति परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब समझनी चाहिये। स्वदोषानुभूति की इस वृत्ति का निरूपण गोस्वामीजी ने 'रामचरित-मानस' के अन्तर्गत किया है। बाल्मीकि जी राम-भक्ति की भूमिकाओं का वर्णन करते हुये कहते हैं—

गुन तुम्हार समुझइं निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तिहि उर बसहु सहित वैदेही।

पूर्ण अनन्यता एवं समर्पण की भावना

महत्व की अनुभूति जितनी ही तीव्र एवं सच्ची होती है, श्रद्धेय या इष्ट के प्रति अनन्यता एवं समर्पण की भावना उतनी ही दृढ़तर होती चली जाती है। इसी कारण भक्ति के पूर्ण उत्कर्ष के लिये इष्ट के प्रति अनन्य समर्पण परम आवश्यक है।

'विनय पत्रिका' के अन्तर्गत इसकी परिणति दृष्टिगोचर होती है—

कहाँ जाउँ कासों कहौं, को सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की।
तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि बनैगी।
प्रभु की विलम्ब अब, दोष दुख जनैगी।

ऐसे अवसर पर तुलसी की विकलता एवं आर्त्त भावना उफन कर ऊपर आ जाती है। वाग्वैदग्ध्य की ओट में वह अपने इष्ट पर अपना अधिकार सा जताने लगता है।"

प्रन करिहौं हठि आजु ते राम द्वार पर्‌यो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि, प्रभु की सौं करि निबर्‌यो हौं।

निष्कामना—भक्ति में लेन-देन का भाव नहीं रहता। भक्त अपने लिये न मुक्ति चाहता है और न भुक्ति। वह चहता है, केवल प्रभु की भक्ति और उनका अनुग्रह। भगवान कह भर दें कि तू, "सच्चा" है यही भक्त के लिये सर्वस्व है—

चहौं न सुगति, सुमति, सम्पत्ति कछु रिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग नाथ-पद, बढै अनुदिन अधिकाई।

तुलसी ने अपनी यह निष्काम 'भक्ति दास्य और आत्म-निवेदन परम' उक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त की है।

भक्ति के लक्षण—द्वैत भाव का त्याग एवं मन की वृत्ति बदल जाना

रामभक्ति के लिये संसार का त्याग आवश्यक नहीं है। आवश्यक है, प्राणी मात्र में समभाव, जिससे अहंकार एवं भेद-बुद्धि का तिरोभाव होता रहे—

सेवक साधु द्वैत भय भागै। श्रीरधुवीर चरन चित लागै।

जो मन सदैव अपने विषय-भोग के विषय में चिन्तित रहता था, वह जब अन्य व्यक्तियों के कल्याण के विषय में सोचने लगे, तब समझना चाहिये कि द्वैत भाव का तिरोभाव हो गया और राम की भक्ति का संस्पर्श साधना को प्राप्त हो गया। मन की सुशीलता की ओर ढल पड़ना ही भक्ति की प्राप्ति का लक्षण है। मन की वृत्ति को बदल देना ही तुलसी का एकमात्र 'मनोराज्य' अथवा मनोरथ है—"तुम अपनायो तब जानिहो जब मन फिरि परिहै।" शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो सदाचार की प्रेरणा स्वतः देती है। इस प्रकार गोस्वामीजी ने शील को अपने व्यापक भक्ति-क्षेत्र में अंतर्भूत कर लिया है।

भक्ति की प्राप्ति साधन-साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है

भक्ति की प्राप्ति साधन साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर अथवा उनके अनुग्रह पर अवलम्बित रहती है। प्रभु के इस अनुग्रह को महाप्रभु बल्लभाचार्य ने 'पुष्टि' कहा है। इसी कारण उनका भक्ति-मार्ग 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है। गोस्वामी जी के ऊपर 'पुष्टिमार्ग' का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। वह भगवत्कृपा को ही भक्ति प्राप्ति का साधन और साध्य सब कुछ मानते हैं :

जाने बिनु भगति न जानियो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ पगनि परत है। [पद 251]

× × ×

तुलसीदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी। [पद 113]

निम्नलिखित पद मे तो गोस्वामीजी 'पुष्टिमार्ग' में दीक्षित सूरदास आदिक भक्त कवियों के एकदम निकट आ जाते हैं :

जाको हरि दृढ़ करि अंग कर्‌यो ।
सोई सुशील पुनीत वेद विद विद्या गुननि भर्‌यो ।
× × ×
केहि आचरन भलो मानै प्रिय, सो तौ न जानि पर्‌यो ।
तुलसीदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खर्‌यो । [पद 239]

नवधा भक्ति का प्रतिपादन

तुलसीदास जी भगवान के सगुण साकार रूप क उपासक थे । 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत भी हमको उनका यही रूप दिखाई देता है :

अन्तर्जामिहुँ तें बड़ बाहिरजामी है प्रभु नाम लिये तें ।
पैज परे प्रहलादहुँ कों प्रगटे प्रभु पाहन ते न हिये तें ।

उन्होंने पाद-सेवन, अर्चन, वंदना, स्मरण आदि समस्त अवयवों सहित नवधा भक्ति-पद्धति का प्रतिपादन किया है । ऐसा करते हुये वह भक्ति की उच्चतम अवस्था को पहुँच जाते हैं । अपने दोषों और आराध्य की पवित्रता का प्रतिपादन वह बार-बार करते हैं । ऐसा करते हुये वह मानो अघाते ही नहीं हैं :

प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी ।
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता ।

प्रेमरूपा एवं सात्विकी भक्ति का सफल निर्वाह

भक्ति के दो भेद किये जाते हैं : (1) प्रेमरूपा और (2) गौण । प्रेमरूपा भक्ति प्रेम की कोटि के अनुसार तीन प्रकार की होती है—गौण, मुख्य एवं 'अनन्य' । कहने की आवश्यकता नहीं है कि तुलसी का प्रेम 'अनन्य' कोटि का है ; अतः उनकी भक्ति अनन्य प्रेमारूपा भक्ति है । उनके प्रेम का आदर्श 'चातक' है । उन्होंने कई पदों में स्वयं को चातक और राम को मेघ मानकर भक्ति की तन्मयता प्रदर्शित की है । इस 'प्रेम' के सम्मुख वह मोक्ष की भी उपेक्षा करते हुये दिखाई देते हैं :

चहौं न सुगति, सुमति, संपति, कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु रहित अनुराग नाथ-पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।

गौणी भक्ति को तीन उपदेशों में विभक्त किया जाता है—सात्विकी, राजसी और तामसी । सात्विकी में उपासना प्रधान होती हैं, राजसी-भक्ति मूर्ति-पूजा-परक होती है और तामसी भक्ति हिंसा पर आधारित होती है । 'विनय-पत्रिका' में सात्विकी गौणी भक्ति को स्थान मिला है :

संयम जप तप नेम धरम व्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसीदास भव रोग रामपद प्रेम-हीन नहिं जाई ।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम-नाम को भक्ति का साधन और साध्य दोनों ही माना है । इस राम-नाम के अन्तर्गत अनन्य प्रेमरूपा भक्ति तथा सात्विकी गौणी भक्ति का सुन्दर सामंजस्य अपने आप हो जाता है ।

नाहिन आवत आन भरोसो
× × ×
बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहि लगत राज-डगरो सो । [पद 173]

गोस्वामी जी अपने मुख से किसी अन्य का नाम उच्चारित नहीं करना चाहते। वह राम के सिवाय अन्य किसी के नहीं हैं :

> गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
> जानकी जीवन ! जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं।

उन्हें तो केवल राम का ही भरोसा है :

> मोकों तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो।
> करम, उपासन, ग्यान बेदमत सो सब भाँति खरो।

राम के प्रति तुलसी की यह अविचल आसक्ति 'विनय-पत्रिका' की श्रेष्ठता को व्यंजित करती है।

निष्कर्ष—'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत भक्ति की पद्धति का पूर्ण प्रकर्ष एवं निर्वाह दिखाई देता है। उसमें भक्तोचित दैन्य एवं अनन्यता की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। निस्संदेह वह भगवद् भक्तों के हृदय का सर्वस्व है।

———

अध्याय 6

विनय-पत्रिका में दार्शनिक सिद्धान्त

प्रश्न 25—'विनय-पत्रिका' के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

प्रश्न 26—'विनय-पत्रिका' कवि के आध्यात्मिक जीवन एवं दृष्टिकोण को समझने का सर्वोत्तम साधन है। इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न 27—'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी जी ने एक स्थल पर लिखा है कि "कोऊ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोऊ मानै। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।" क्या आप कह सकते हैं कि उक्त पंक्तियां गोस्वामीजी के दार्शनिक दृष्टिकोण को सही रूप में प्रस्तुत करती हैं?

उत्तर—**गोस्वामी तुलसीदास मूलतः भक्त हैं**

गोस्वामी तुलसीदास मूलतः भक्त हैं। 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत भी राम-भक्ति की ही प्रतिष्ठा की है और आद्योपान्त उसी को जीवन का चरम लक्ष्य भी माना है। अतएव यह अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि उनकी वाणी में भक्ति के गूढ़ रहस्यो को ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाय। ज्ञान-मार्ग के सिद्धान्तों को खोजना विशेष लाभदायक सिद्ध नहीं होगा।

तुलसी की भक्ति-भावना दर्शन की भूमि पर प्रतिष्ठित है

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि 'गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-पद्धति श्रुतिसम्मत एवं संजुत विरति-विवेक' है। वह गहन-गम्भीर चिन्तन का परिणाम है। उनकी भक्ति साधना और साध्य दोनों ही रूपों में स्वीकृत है। उनकी भक्ति-भावना के पीछे हमें दार्शनिक तुलसीदास के भी दर्शन होते हैं। 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत अभिव्यक्त दार्शनिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करते हैं:

जगत-सम्बन्धी विचार—तुलसीदासजी ने जगत को मिथ्या माना है और उसके मिथ्यात्व की भयंकरता के कारण ही वह आकुल-व्याकुल दिखाई देते हैं। उन्होंने जगत की असारता अनेक प्रकार से अभिव्यक्त की है:

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी।
देह गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी।
सोवत सपने सहै संसृति संताप रे।
बूड़ो मृगवारि खायो जेवरी को सांप रे:

× × ×

जग-नभ-वाटिका रही है फल फूलि रे।
धुआं के से धौरहर देखि तू न भूलि रे॥

परन्तु मिथ्या होने पर भी यह जगत सत्यवत् प्रतीत होता है।

"जद्यपि मृषा सत्य भासै, जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।" इस सत्यासत्य के द्वन्द्व को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि यह वर्णनातीत है—"देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये।" अधिक अच्छा हो कि हम सत्यासत्य के विचार से दूर ही रहें—इस विवाद में ही न पड़ें:

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोऊ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपुनि पहिचानै। [पद 111]

शंकराचार्य जी के विचारों के अनुरूप यह 'जगत' सर्वथा सारहीन वस्तु है जिसका अस्तित्व ही नहीं है। यह तो एक ऐसे चित्र के समान है जिसकी रचना अशरीरी चित्रकार ने रंगों की सहायता के बिना ही शून्य भीति पर की है। इस कारण यह अत्यन्त दारुण एवं भयावह है:

रविकर नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।

जीव सम्बन्धी विचार—भक्ति-भावना के लिये भेद—द्वैतभाव—अनिवार्य है। सेवक-सेव्य भाव के अभाव में भक्ति हो ही नहीं सकती है। गोस्वामी जी ने इसी कारण जीव से ब्रह्म को पृथक माना है:

जिव जबतें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो।

ईश्वर सम्बन्धी विचार—तुलसी के राम अवतार लेकर भक्तों के हितार्थ लीला करते हैं। परन्तु सगुण होते हुये भी वह अनादि, अनन्त, अखण्ड और अच्युत हैं। वह अंशी निर्गुण, दोनों रूपों वाला अनादि अखण्ड अच्युत आदि हैं। राम उसी ब्रह्म का लीलावतार हैं:

अनघ, अद्वैत, अव्यक्त, अज, अमित अविकार आनंद सिंधो।
× × ×
जयति सच्चिदव्यापकानंद यद्, ब्रह्म, विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
विमल ब्रह्मादि सूर सिद्ध संकोचवस, विमल गुन-गेह नर-देहधारी।

माया सम्बन्धी विचार—माया के स्वरूप का विवेचन भी गोस्वामीजी ने बहुत कुछ शंकराचार्य जी के 'मायावाद' के समान किया है। माया ब्रह्म के अधीन हैं और जीव माया के अधीन है: राम की कृपा द्वारा ही इस माया से मुक्ति सम्भव है:

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तब कृपा दयालु दास-हित, मोह न छूटै माया।

यद्यपि 'मानस' की भाँति 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामीजी ने माया के भेदों का निरूपण नहीं किया है, तथापि यह स्पष्ट हो ही जाता है कि उनके मतानुसार जगत की भयंकरता एवं भ्रमात्मकता का कारण राम की अविद्या (माया) में और विद्या माया की सहायता से ब्रह्म में जीव का लय सम्भव होता है। सीताजी वस्तुतः विद्या (माया) का रूप हैं। उनसे ही गोस्वामीजी अपने उद्धार के लिए सिफारिश कराते हैं:

कबहुँक अम्ब अवसरु पाइ।
मेरिओ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ। [पद 49]

दुःख के कारण सम्बन्धी विचार

समस्त दुःख का कारण जीव की द्वैत-बुद्धि है—

'तो कत द्वैत-जनित संसृत दुख संसय सोक अपारा।'

जीव विशुद्ध रूप आनन्द-सिंधु मध्य स्थित है। परन्तु विकार ग्रस्त हो जाने के कारण वह माया-जाल में फँस गया है और अपने वास्तविक रूप को भूल गया है। ब्रह्म से पृथक् होकर जीव विवश बना हुआ अनेक योनियों में भटकता रहता है :

तैं निज करम डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ॥
ताते बरबस भयो अभागे। ता फल गरभ बास दुःख आगे ॥

दुःख से निवृत्ति अथवा मोक्ष के उपाय

संसार के मिथ्यात्व को समझना और उससे सम्बन्ध विच्छेद कर देना मोक्ष है। इसी से दुःख की निवृत्ति होती है :

तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कलप उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई।

इस अज्ञान-जन्य द्वैत-बुद्धि का निवारण आन्तरिक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है :

बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै।
घृत पूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कलपसत, औटत नास न पावै। [पद 115]

इस अज्ञान से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है—राम की भक्ति। इसी गंगा-जल द्वारा अज्ञान-जन्य मलिनता को दूर किया जा सकता है—

रघुपति भक्ति वारि छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै। [पद 129]

गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' के अनेक पदों में इस बात पर बल दिया है कि अज्ञान-निवारण का एकमात्र साधन हरिपद-रति है। साधन साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर ही अवलम्बित है :

"होउ राम अनुकूला रे" तथा "छाको हरि दृढ करि अंग कर्‌यो" आदि में उन्होंने इस तथ्य की ओर स्पष्टतः संकेत किया है।

सिद्धान्त—गोस्वामी तुलसीदास समन्वयवादी भक्त कवि थे। उन्होंने प्रत्येक सिद्धान्त के महत्व को स्वीकार किया और उससे सार-संचायन किया। साथ ही उन्होंने सिद्धान्त और व्यवहार के भेद पर भी दृष्टि रखी। इन्हीं कारणों वश हमें उनके ऊपर विभिन्न दार्शनिक मतों अथवा चिन्तन-पद्धतियों का प्रभाव दिखाई देता है। इस विविधता के फलस्वरूप उनका दार्शनिक मतवाद सिद्धान्तों के मतभेद का विषय बन गया है। यह प्रश्न प्रायः उत्पन्न होता है कि गोस्वामीजी किस दार्शनिक वाद के अनुयायी थे। वह अद्वैतवादी थे, विशिष्टाद्वैतवादी थे, द्वैतवादी थे अथवा द्वैताद्वैतवादी थे। उनके कथनों के आधार पर उन्हें चाहे जिस 'मतवाद' का अवलंबी बताया जा सकता है और बताया जाता है और साथ ही उन्हें प्रत्येक मतवाद का विरोधी भी बताया जा सकता है। गोस्वामीजी के दार्शनिक चिन्तन के फलस्वरूप आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि वे परमार्थ की दृष्टि से अद्वैत मत को स्वीकार करते हैं परन्तु व्यवहारिक क्षेत्र में वह भेद करके चलना ठीक समझते हैं—'वे परमार्थ-दृष्टि से अद्वैत पक्ष पर आते हुये कहते

हैं कि ये भेद यद्यपि मायाकृत हैं—परमार्थतः सत्य नहीं हैं--पर इन्हें मिटाने के लिए ईश्वर को स्वामी मानकर भक्ति करनी पड़ेगी :

मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।

हम यहाँ केवल इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं कि तात्विक दृष्टि से प्रत्येक 'मतवाद' का लक्ष्य केवल एक ही परम सत्ता के महत्व का प्रतिपादन है। अतः प्रत्येक सिद्धान्त का समाहार अन्ततः अद्वैत चिन्तन में ही होना चाहिये।

'विनय-पत्रिका' में कई स्थलों पर गोस्वामीजी ने इस प्रकार के कथन किये हैं जिनके आधार पर विद्वान उन्हें प्रत्येक दार्शनिक 'वाद' का विरोधी बताने लगते हैं। अद्वैतवाद का विरोध :

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-वियोगी।

अद्वैतवाद का विरोध

जे मुनि ते पुनि आपहिं आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने।

निम्नलिखित पद में व तीन 'वादों' का विरोध करते हुये प्रतीत होते हैं :'

केसव कहि न जाइ का कहिये।

× × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै। [पद 111]

इस पद को लक्ष्य करके कुछ विद्वानों का यह कथन है कि तुलसीदास विशिष्टाद्वैत, द्वैत और अद्वैत, तीनों सिद्धान्तों को भ्रम मानते थे तथा कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों की शक्ति नष्ट हुई मानते थे। हमारे विचार से बात ऐसी नहीं है। बात यह है कि गोस्वामीजी युगलरूप के उपासक थे और सेवक-सेव्य भाव से उनकी भक्ति करते थे : परमार्थिक दृष्टि से वह केवल राम की सत्ता स्वीकार करते थे, जगत को मृषा और प्रकृति को 'प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके' मानते थे। उपर्युक्त पद को पद संख्या 116 के साथ मिलाकर पढ़ने से उनका मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है :

ग्यान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसीदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं।

गोस्वामीजी वस्तुतः करना चाहते थे प्रत्येक प्रकार का विवेचन—जिसमें दार्शनिक विवेचन भी आ जाता है—और जो विश्लेषण पर आधारित रहता है। विश्लेषण निम्न मानस की वृत्ति होने के कारण काल और दिशा की सीमाओं द्वारा आबद्ध रहता है। वास्तविक ज्ञान तभी सम्भव है जब हमारा बुद्धि मानस-जाग्रत हो और हमारी संश्लेषण वृत्ति क्रियाशील हो उठे। अतः वह कहना यह चाहते थे कि सिद्धान्त विषयक समस्त विवेचन दिशा-काल द्वारा आबद्ध होने के कारण 'भ्रम' है। जब तक जीव 'साधन' में लीन रहेगा, तब तक उसको अहं-भाव अवश्य बना रहेगा और उसकी संश्लेषण वृत्ति, जो अहंकार के नाश का परिणाम है, जागृत नहीं हो पायेगी। इसी कारण गोस्वामीजी ज्ञान-प्राप्ति को साधन-साध्य न मानकर प्रभु की कृपा पर अवलम्बित मानते हैं और दार्शनिक विवेचन को विशेष कल्याणकारी नही मानते हैं—"तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै", कथन पर इसी दृष्टि से विचार किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष—पारमार्थिक दृष्टि से गोस्वामीजी को अद्वैत सिद्धान्त ही मान्य था। जीव की सीमाओं एवं दुर्बलताओं को देखते हुये उन्होने ज्ञान-मार्ग की बजाय भक्ति-मार्ग का अवलम्बन करने की बात कही।

भक्ति की ओर झुकाव होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण है। वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत वर्णित सप्त भूमिकाओं में सातवीं भूमिका 'विचारणा' है। 'विचारणा' का लक्षण ही यह है कि दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते हुये उनको दुस्साध्यता दिखाकर मन को भक्ति की ओर प्रवृत्त किया जाये। गोस्वामीजी ने अपने 'भक्ति-दर्शन' के निर्वाह के लिये किया भी यही है।

———

अध्याय 7

विनय-पत्रिका में कलापक्ष

प्रश्न 28—"विनय-पत्रिका" के कलापक्ष का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न 29—" 'विनय-पत्रिका' की भाषा में तुलसी के शब्द-ज्ञान, वाक्-चातुर्य, अर्थ-गौरव, उक्ति-वैचित्र्य, अलंकारों का प्रस्फुटन एवं लोक-जीवन के आधार पर प्रचलित कहावतों-मुहावरों के प्रयोग की कुशलता का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है।"उपयुक्त उद्धरण देकर इस कथन के औचित्य को प्रमाणित कीजिए।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' की भाषा ब्रज भाषा है।

'रामचरितमानस' में हमको तुलसीदासजी के अवधी पर भाषाधिकार का दर्शन होता है। 'विनय-पत्रिका' में उनके ब्रजभाषाधिकार को देखकर आश्चर्य होता है। 'विनय पत्रिका' की ब्रजभाषा संस्कृत बहुला है। उसमें हमको ब्रजभाषा के सरल और क्लिष्ट दोनों ही रूप देखने को मिलते हैं। श्लोकों की भाषा में हमें संस्कृत के काव्य ग्रन्थों जैसी कोमलकांत पदावली के दर्शन होते हैं। 'विनय पत्रिका' के भाषा सौन्दर्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन निम्नलिखित प्रकार किया जा सकता है :

शब्द भण्डार

भाषा सर्वत्र भावानुकूल है। उसमें संस्कृत शब्दों के तत्सम और तद्भव दोनों ही रूप पाए जाते हैं। शब्दों के रूप प्रसंगानुसार कहीं ब्रजभाषा व्याकरण के द्वारा और कहीं संस्कृत-व्याकरण के द्वारा अनुशासित हैं। ध्यान देने की बात यह है कि गोस्वामीजी ने साहित्य और समाज में प्रचलित रूपों में ही शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होने स्वयं शब्दों के रूप को कहीं भी विकृत नहीं किया है। दार्शनिक विवेचन करते समय उन्होंने [illegible] शब्दावली का उपयुक्त प्रयोग किया है :

> प्रकृति महत्व, [illegible], गुरु देवता,
> व्योम, मरुताग्नि अमलांबु उर्वी।
> बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्रान, चित्तातमा,
> काल, परमानु, चिच्छक्ति गुर्वी।
> × × ×
> अनघ अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज
> अमित, अविकार, आनन्द, सिंधो।

प्रसंगानुसार इन्होंने अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। भोजपुरी उदाहरण देखिए :

"हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे।"

गोस्वामीजी ने 'पनवार', 'खेरे', 'द्याइबी' इत्यादि अनेक बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग किया है।

इतना ही नहीं, आपने अरबी फारसी के शब्दों के प्रयोग द्वारा अपने शब्द भण्डार को बहुत ही उदार एवं विस्तीर्ण बना दिया है। निसानी, ख्याल, मिसकीनता आदि फारसी के शब्द हैं तथा दिरमानी, सौदा, निवाज आदि अरबी के शब्द इनके शब्द-ज्ञान के स्वयं प्रमाण हैं।

कहावतों और मुहावरों का प्रयोग

लोक प्रचलित कहावतों और मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा में सजीवता एवं चित्रात्मकता आ जाती है। तुलसी ने लोक जीवन गत अनेक कहावतों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग करके अपनी भावाभिव्यक्ति को बहुत ही प्रभावशाली एवं सजीव बना दिया है। उदाहरण देखिए :

लोकोक्तियां और कहावतें

(1) सावन के अंधहि ज्यों सूझत हरो-हरो।
(2) दूध को जर्यो पियत फूंकि-फूंकि मह्यो।
(3) गोपद बूड़िबो जोग करम करौं, बातनि जलधि थहावौं।

मुहावरे

(1) हौं आयो नकबानी।
(2) ह्वं हौं माखी घी की।
(3) सपने न अघाइ।

अर्थ गौरव

'विनय पत्रिका' में अर्थ गाम्भीर्य देखते ही बनता है। उसमें भाषा की कसावट द्रष्टव्य है—कहीं भी एक भी शब्द भरती का नहीं दिखाई देता है। उसकी भाषा भाव व्यंजना में पूर्ण सहायक है। अर्थ गाम्भीर्य के उदाहरण 'विनय पत्रिका' में आद्योपान्त भरे पड़े हैं। एक उदाहरण देखिए :

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरिचरन सरोज सुधा रस, रविकर जल लय लायो।

उक्ति वैचित्र्य

विनय के अनेक पदों में तुलसी की भावुकता अपनी ऋजुता का बांध तोड़कर वैचित्र्य की सीमा में प्रवेश करती हुई दिखाई देती है :

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिनं देत दए बिनु, वेद बड़ाई भानी।

× × ×

दुखी दीनता दुखिइन के दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी।

तुलसी कहीं लाक्षणिक पदावली के साथ अपना उक्ति वैचित्र्य प्रकट करते हैं :

तुलसी कही है सांची देख बार-बार खांची,
ढील किये नाम महिमा की नाव न बोरिहौं।

और कहीं व्यंजनात्मक पदावली के द्वारा वह उक्ति वैचित्र्यपूर्ण अभिव्यक्ति करते हुए दिखाई देते हैं :

कहु केहि कहिए कृपानिधे ! भव जनित विपत्ति अति

× × ×

तुलसीदास कह आस यहै बहु पतित उधारे।

अभिधा के द्वारा उक्ति की विचित्रता जैसी 'विनय पत्रिका' में दिखाई देती है वैसी अन्यत्र प्रायः दुर्लभ ही है। उन्हें अपने स्वामी की बात के बनने बिगड़ने का भी ध्यान है, इस बात का वह किस सफाई के साथ कहते हैं, यह देखते ही बनता है :

कहाँ बलि वेद की न लोक कहा कहैगो।

काकुवक्रोक्ति के द्वारा कथन को वैचित्र्य प्रदान करके तुलसी ने अपने पदों की भाषा को एक विचित्र गरिमा प्रदान कर दी है। 'विनय पत्रिका' के विनय के बहुत कम ऐसे पद हैं जिनमें काकुवक्रोक्ति का चमत्कार सन्निविष्ट न हो। एक उदाहरण देखिए :

मेरे तौं थोरो ही है, सुधरैगी बिगरिये,

बलि, राम रावरी, सौं रही रावरी चहत

वाक् चातुर्य अथवा वाग्वैदग्ध्य

"विनय-पत्रिका' लिखने में तुलसीदासजी का मुख्य उद्देश्य राम की भक्ति प्राप्त करना है। वह राम की शरण में पहुँचकर जो कुछ कहना चाहते हैं, उसको बड़े ही वैदग्ध्य के साथ, वाणी के घुमाव के साथ प्रस्तुत करते हैं। गोस्वामीजी के स्तुति, विनय एवं मनोराज्य के पदों में उनका वाग्वैदग्ध्य मुखर हो उठा है। विनय के पदों में वह अपनी हीनता में देवी देवताओं की महत्ता का वर्णन करने के अतिरिक्त वह यह भी बता देते हैं कि उनके उद्धार की तरकीब क्या है। वह देवी देवता श्रीरघुनाथजी से कब और किस प्रकार उनके उद्धार की सिफारिश करें। देखिये, वह माता जानकी से सिफारिश की प्रार्थना किस चातुरी के साथ करते हैं :

कबहुँक अम्ब अवसरु पाई।

मोरिहू सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ।

× × ×

बूझिहैं 'सो है कौन' कहिबी नाम दसा जनाइ।

सुनत राम कृपाल के मेरी बिगरिऔ बनिजाय।

राम के सम्मुख भी उन्होंने अत्यन्त वाक्चातुर्य के साथ निवेदन किया है :

कह्यो न परत, बिनु न रह्यो परत, बड़ो सुख कहत बड़े सौं बलि दीनता।

प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी, प्रभु की पुनीतताअपनी पाप-पीनता।

× × ×

गीध, सिला, सबरी की सुधि सब दिन किए,

होइगी न साई सों सनेह हित हीनता।

अपने उद्धार के लिए वह राम के पीछे पड़ जाते हैं। वह यह तो जानते ही हैं कि राम उन्हें धक्का देकर तो निकलवायेंगे नहीं। तब फिर कभी न कभी उद्धार हो ही जायगा। यदि मन को वश में करने से उद्धार होता है, तो मन को समझाने का काम आप ही कीजिए :

मेरा मन हरिजू ! हठ न तजै ।
× × ×
हौं करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होई तबहिं जब प्रेक्षक बरजै ।

विशुद्ध पापियों की शरण तो एकमात्र श्रीरघुनाथजी ही हैं । लीला वर्णन के अन्तर्गत यह वाग्वैदग्ध्य देखते ही बनता है :

"तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना ।"

इस प्रकार के वाग्वैदग्ध्य के उदाहरण 'विनय-पत्रिका' में भरे पड़े हैं ।

बिम्ब-विधान

गोस्वामीजी ने पाप का वर्णन न करके पापियों के नाम गिनाए हैं । ऐसा करने से बिम्ब उपस्थित करने का सुन्दर माध्यम हाथ लग गया है, क्योंकि बिम्ब व्यक्ति का ही होता है । 'विनय-पत्रिका' में भाव-विधान के लिए तुलसी ने विभाव-विधान के हेतु बड़े ही सजीव बिम्ब उपस्थित किए हैं । एक उदाहरण देखिए :

मोसे दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न,
आपुनी समझि सूझि आयो टकटारि हौं ।
गाड़ी के स्वान की नाईं, माया-मोह की बड़ाई,
छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हौं ।

अलंकार योजना

'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास की भावाभिव्यक्ति अत्यन्त स्वाभाविक एवं हृदयस्पर्शी है; उसमें अनेक अलंकारों का स्वाभाविक प्रस्फुटन हो गया है । ये अलंकार शब्दगत और अर्थगत दोनों ही प्रकार के हैं । विशेषता यह है कि गोस्वामीजी ने इनका प्रयोग भावों को गौण बनाकर कहीं नहीं किया है । उनकी योजना सहज स्वाभाविक है ।

शब्दालंकारों में अनुप्रास की छटा तो प्रत्येक पद में समाई हुई है । इसके अतिरिक्त यमक, श्लेष एवं काकुवक्रोक्ति अलंकारों के भी यथास्थान सफल प्रयोग पाए जाते हैं ।

अर्थालंकारों में साम्यमूलक और विरोधमूलक अलंकारों का विशेष प्रयोग पाया जाता है । उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह, उल्लेख, दृष्टान्त, उदाहरण, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग पूर्णतः स्वाभाविक रूप में पाया जाता है । कतिपय उदाहरण देखिए :

(क) **उपमा** जैसे सामान्य अलंकार का चमत्कारिक प्रयोग देखिए :

धुआँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ।

(ख) **रूपक** उदाहरण देखिए :

विषम कहार मार-मदमाते चलहिं न पाँव बहोरा रे ।

(ग) **उदाहरण** अलंकार का चमत्कारिक प्रयोग देखिए :
ऐसी मूढ़ता या मन की ।

परिहरि राम भगति गुण सरिता आस करत ओस-कन की ।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।

(घ) विभावना एवं विशेषोक्ति का साथ प्रयोग देखिए :
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे।

अलंकारों का यह चमत्कारिक प्रयोग हमें बिहारी के दोहों में निहित आलंकारिक कौशल का स्मरण करा देता है। अन्तर इतना है कि रीतिकाल के कवियों ने कलापक्ष के विधान के लिए इतना प्रयोग किया था। तुलसी के अलंकार भाव-विधान के अनुगामी मात्र हैं। सारांश यह है कि 'विनय-पत्रिका' की अलंकार योजना विषय के बोधगम्य बनाने एवं भावोत्कर्ष करने में सहायक सिद्ध हुई है।

निष्कर्ष—'विनय-पत्रिका' में हमें सर्वत्र तुलसी के भाषाधिकार के दर्शन होते हैं। शब्द-चयन, अर्थ-गांभीर्य, उक्ति वैचित्र्य, कहावतों, मुहावरों के प्रयोग आदि प्रत्येक दृष्टि से 'विनय पत्रिका' की भाषा उत्कृष्ट है और भावाभिव्यक्ति को गरिमा प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई है।

प्रश्न 30—गीत-परम्परा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए 'विनय-पत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न 31—'विनय-पत्रिका' को ध्यान में रखते हुए हिन्दी गीत काव्य-परम्परा के अन्तर्गत तुलसी का स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न 32—गीतकाव्य की दृष्टि से 'विनय पत्रिका का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—गीत-काव्य के लक्षण।

यह रचना गीत काव्य के अन्तर्गत आती है। भावना जब घनीभूत हो उठती है, तब अभिव्यक्ति संगीतमय बन जाती है। गीत-काव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से की जाती है। उसमें विचारों की एकरूपता रहती है। विद्वानों ने गीत-काव्य के लक्षण विभिन्न प्रकार से निर्धारित किये हैं। गीत-काव्य के सामान्य लक्षण इस प्रकार ठहरते हैं—(1) आत्माभिव्यक्ति, (2) आन्तरिक प्रेरणा, (3) विचारों की एकरूपता, (4) आवेग, (5) संगीतात्मकता, (6) संक्षिप्तता तथा (7) प्रसाधन की उपेक्षा।

हिन्दी-गीत-काव्य की परम्परा

हिन्दी गीत-काव्य अपनी परम्परा के लिए संस्कृत गीत-काव्य का ऋणी है। सामवेद के गीतों में संस्कृत के गीत-काव्य की परम्परा प्रारम्भ होती है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में स्पष्ट लिखा है कि पंचम वेद नाट्यशास्त्र की रचना के लिये उन्होंने सामवेद से संगीत तत्व लिया था।

धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त हमको सामाजिक पत्रों और सामाजिक उत्सवों के अवसर पर गीतों का प्रचार मिलता है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् इस परम्परा में हमको बौद्ध-साहित्य की गाथाएँ मिलती हैं। इनमें वैराग्य के प्रति हार्दिकता और उत्साह के दर्शन होते हैं।

बौद्ध-साहित्य के पश्चात् संस्कृत साहित्य की परम्परा आती है। कुछ लोगों के मतानुसार कालिदास कृत 'मेघदूत' की गणना भी इसी परम्परा में होनी चाहिये।

अन्यथा जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' में हमें सर्वप्रथम गीत-काव्य का उन्नत एवं परिष्कृत रूप दिखाई देता है। 'गीतगोविन्द' के गीत अनेक राग-रागनियों में बँधे हुये हैं और इनकी भाषा कोमलकान्त पदावली युक्त है। फलतः 'गीतगोविन्दम्' एक अत्यन्त सरस एवं मधुर गीत काव्य है।

हिन्दी में हमको गीत परम्परा के दर्शन 'आदिकाल' में ही हो जाते हैं। आदि काल अथवा वीर-गाथाकाल में हमको गीत-काव्य-परम्परा दो रूपों में मिलती है—(1) चारणों एवं भाटों के वीर गीत, (2) सिद्धों एवं नाथ पंथियों के गीत जो आगे चलकर सन्त वाणी के रूप में प्रसिद्ध हुए।

अमीर खुसरो के ब्रजभाषा में रचित रसीले गीत हमको 13वीं व 14वीं शताब्दी में ही मिल जाते हैं। इसी 'काल' में हमको मैथिल-कोकिल-विद्यापति पदावली उपलब्ध होती है। विद्यापति के पद जयदेवकृत 'गीत गोविन्द' की परम्परा में आते है। विद्यापति को अभिनव जयदेव कहा जाता है। विद्यापति के पदों में लालित्य संगीतात्मकता, उक्ति वैचित्र्य एवं भाषा प्रवाह की त्रिवेणी का दर्शन करके सहृदय पाठक कृतकृत्य हो जाता है।

विद्यापति के पश्चात् भक्ति काल में ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति शाखा के अन्तर्गत हमको कबीरदास आदि संत कवियों के पद मिलते हैं। इनके पद श्रेष्ठ गीत काव्य के उदाहरण हैं। इन पदों में वैराग्य भावना है। इनमें अधिकांश पदों की रचना विरह निवेदन के रूप में हुई। इनकी भाषा खरी और तीखी है।

कबीर आदि सन्त कवियों के गीतों की परम्परा का पूर्ण विकास हमको सगुण भक्ति शाखा के कवियों की पद रचना के रूप में दिखाई देता है। इस समय तक कई प्रकार के गीतों की परम्परा प्रचलित हो चुकी थी :

(1) धार्मिक कृत्यों के उपयुक्त गीत।
(2) सामाजिक अवसरों एवं उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत।
(3) विप्लव एवं विरोध को उत्तेजक करने वाले ओजपूर्ण गीत।
(4) जयदेव एवं विद्यापति के भाव-मण्डित, सरस एवं माधुर्यपूर्ण गीत।

अष्टछाप के सूरदास, नन्ददास प्रभृति कवियों, मीराबाई तथा अन्य अनेक कृष्णभक्त कवियों के पदों में गीत-काव्य का चरम विकास हुआ। इन कवियों में 'सूरदास' के पद सर्वोत्कृष्ट हैं। उनमें हमें गीत काव्य के पूर्ण प्रकर्ष के दर्शन होते हैं। अन्य कृष्णभक्त कवियों में मीराबाई का नाम उल्लेखनीय है। उनके पद आन्तरिक अनुभूति और पूर्ण तन्मयता से ओत प्रोत हैं। वह अपने गिरिधर गोपाल सांवरिया कृष्ण के प्रेम में दीवानी बनी हुई दिन रात गाती रहती थीं। इसी युग में गोस्वामी तुलसीदास हुए। उनके पदों की भावाभिव्यक्ति एवं कला-चातुरी अप्रतिम है। रीतिकाल में आकर यह परम्परा अवरुद्ध प्रायः हो गई और गीत काव्य का विकास रुक गया।

आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ इस विधा, गीत-काव्य परम्परा का पुनः श्रीगणेश हुआ। सत्यनारायण कविरत्न, वियोगीहरि हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने इस परम्परा के अन्तर्गत सुन्दर एवं मार्मिक रचनाएँ लिखीं।

गीत काव्य का यह स्रोत छायावाद के युग में पूर्ण रूप में प्रस्फुटित हुआ। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा इस युग में इस विधा के प्रमुख कवि हैं। डा०

रामकुमार वर्मा और बालकृष्ण शर्मा ने भी 'गीत काव्य' परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। इसी युग में बच्चन ने भी अनेक खुमारी भरे गीत लिखे।

इसके बाद प्रगतिवाद के अन्तर्गत अनेक गीत रचे गये। अंचल, नरेश, नेपाली, भारती आदि के गीत काफी लोकप्रिय हुए। आजकल भी अनेक युवक कवि छोटे-छोटे गीत लिखते रहते है। इनमें लोक गीत अपेक्षाकृत अधिक सरस एवं लोकप्रिय हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आदिकाल से लेकर आज तक हिन्दी में हमको गीतकाव्य की अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है।

तुलसी की 'विनय पत्रिका' के गीति पक्ष का विवेचन

गोस्वामी तुलसीदास की तीन रचनाएं गीत-काव्य के अन्तर्गत आती है— विनय-पत्रिका, गीतावली और श्रीकृष्णगीतवाली। तीनों ही रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। इनमें 'विनय-पत्रिका' सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है।

'विनय-पत्रिका' में निम्नलिखित प्रकार के पद हैं :

(1) प्रार्थना या स्तुति सम्बन्धी पद।

(अ) गुण-वर्णन (कथाओं एवं रूपकों द्वारा)।

(आ) रूप वर्णन (अलंकार वर्णन द्वारा)।

(इ) राम भक्ति याचना (अन्तिम पद में)।

(2) स्थानों का वर्णन (चित्रकूट और काशी) सम्बन्धी पद।

(3) मन के प्रति उपदेश सम्बन्धी पद।

(4) संसार की असारता सम्बन्धी पद।

(5) ज्ञान वैराग्य वर्णन सम्बन्धी पद।

(6) आत्म चरित संकेत सम्बन्धी पद।

'विनय पत्रिका' में शांत रस की बहुत ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उसमे अभिव्यक्ति भावनाएँ सर्वथा स्वतन्त्र हैं और उनके आत्माभिव्यंजना का पूर्ण प्रकर्ष परिलक्षित होता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने तो यहां तक लिख दिया है कि **"सूरदास के विनय के पद भी अनुभूति में तुलसी के पदों से गहरे नहीं हैं। तुलसी के स्थायी भाव की प्रौढ़ता सूर में नहीं है, क्योंकि तुलसी की उपासना दास्य भाव की है।**

'विनय पत्रिका' के काव्य सौष्ठव पर विचार करते समय सर्वप्रथम हमारे सामने यह बात आती है कि उसमें हमको ब्रजभाषा के परिनिष्ठित स्वरूप का सर्वप्रथम दर्शन होता है। उसमें हमें संस्कृत और ब्रजभाषा का मणि-कांचन संयोग दिखाई देता है। इससे हमें संस्कृत की कोमलकांत पदावली और ब्रजभाषा के स्वाभाविक रूप दोनों के माधुर्य का आस्वादन प्राप्त होता है। आरम्भ के स्तोत्रों का पद विन्यास तो एकदम गीति गोविन्दम् की भांति सरल, मधुर और सजीव है। यथा :

> कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर विग्रह रुचिर,
> तरुन रवि कोटि तनु तेज भ्राजै।
> भस्म सर्वाङ्ग अर्धाङ्ग शैलात्मजा,
> व्याल नृकपाल-माला विराजै।

'विनय पत्रिका' में विज्ञ समाजोचित क्लिष्ट तथा जनसाधारण के समझने योग्य सरल, दोनों ही प्रकार की ब्रजभाषा का प्रयोग पाया जाता है। लोकोक्तियों के

समावेश, मुहावरों के मेल, काव्योत्कर्ष हेतुक अलंकारों के स्वाभाविक प्रस्फुटन, वाक्य विन्यास की भाषा भावों की अनुगामिनी बन गई है और ब्रजभाषा पद शैली का बहुत ही व्यवस्थित एवं परिनिष्ठित रूप हमारे सामने आता है।

वेदान्त सदृश गूढ़ सिद्धान्त को सहज ही हृदयंगम करा देने वाली भाषा में अंकित कर देना गोस्वामीजी जैसे प्रकृति सिद्ध भाषा के अधिकारी एवं वाणी के वरद पुत्र को ही सामर्थ्य द्वारा सम्भव था। 'विनय पत्रिका' के प्रभावोत्पादक और संजीव आत्माभिव्यंजन की सबसे बड़ी विशेषता यही है।

'विनय पत्रिका' के पदों की रचना संगीत के नियमों के आधार पर हुई है। भावना विशेष के लिए विशेष रागिनी में रचना की गई है। इस विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुये डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "हर्ष और करुणा की भावनाएँ जयश्री, केदारा, सोरठ और आसावरी, वीर की भावना में मारू और कान्हरा, शृंगार की भावना में ललित, गौरी, बिलावल, सुहो और बसत, शांत की भावना वर्णन में रामकली, विभास, कल्याण, मलार और टोडी का प्रयोग है।··· इस तरह इक्कीस रागों में 'विनय-पत्रिका' का आत्मनिवेदन है।"

'विनय-पत्रिका' के आधार पर हिन्दी गीत-काव्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान

तुलसीदास के पूर्व हिन्दी साहित्य में गीत-काव्य में भक्ति-भावना उपस्थित करने वाले दो कवि थे—विद्यापति और कबीर। "शृंगार रस की वासनामयी प्रवृत्ति एकमात्र विद्यापति की कविता की शासिका थी।······ कबीर की कविता में आत्म-समर्पण की भावना ही स्थिर नहीं हो सकी। (डॉ० रामकुमार वर्मा)

तुलसी के समकालीन कवियों में कृष्णभक्ति शाखा के सूरदास प्रभृति अनेक कवियों ने गीत-काव्य की रचना की। इनमें सूरदास के पद अत्यन्त उच्च कोटि के थे। परन्तु इनकी भक्ति-भावना में आत्म-समर्पण की वह भावना नहीं दिखाई देती है जो हमें तुलसी के पदों में दिखाई देती है, क्योंकि इनकी भक्ति सख्य-भाव का सहारा लिए हुए थी। अतएव 'विनय-पत्रिका' का आदर्श मौलिक रूप से साहित्य में अवतरित हुआ। परवर्ती कवियों में 'विनय-पत्रिका' जैसी तन्मयता और भाव-प्रवणता का अभाव है। इनमें आवेश की प्रधानता दिखाई देती है—भाव-गाम्भीर्य का प्रकर्ष नहीं है। छायावादी कवियों का प्रधान आकर्षण नारी-सौन्दर्य के प्रति है। प्रगतिवादी, प्रयोगवादी तथा 'नई-कविता' के गीतकारों में वासना का नग्न रूप झाँकता हुआ दिखाई देता है। इनमें अधिकांश कवियों में कला का स्तर भी बहुत ही सामान्य कोटि का है।

निष्कर्ष—हिन्दी गीत-काव्य के क्षेत्र में सूरदास एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी ठहरते हैं। सूरदास में तल्लीनता अधिक है और तुलसी में भाव-प्रवणता एवं कला-प्रवणता अधिक है। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र के स्वामी हैं। इतना अवश्य है कि 'विनय-पत्रिका' हिन्दी 'गीत-काव्य' में एक मौलिक आदर्श को लेकर अवतरित हुई। उसका स्थान सर्वथा अक्षुण्ण है। लोक-धर्म की व्यवस्था और समन्वय भावना 'विनय-पत्रिका' की बहुत बड़ी विशेषताएँ हैं।

प्रश्न 33—'विनय-पत्रिका' के रचयिता के रूप में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान निर्धारित कीजिये।

अथवा

प्रश्न 34—काव्योत्कर्ष की दृष्टि से तुलसी की रचनाओं में 'विनय-पत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—हिन्दी काव्य के स्वरूप का निर्माण एवं उसके महत्व की प्रतिष्ठा करने वाले कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी काव्याकाश में तुलसी और सूर का जोड़ा चन्द्र और सूर्य की भाँति प्रसिद्ध है।

गोस्वामीजी ने चौदह ग्रन्थों की रचना करके अपना स्थान सुरक्षित कर लिया। इन ग्रन्थों में 'रामचरितमानस' सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसमें इन्होंने जीवन और संस्कृत की सविस्तार अभिव्यक्ति की है। इस ग्रन्थ मे प्रबन्ध शैली में गोस्वामीजी ने जीवन के पूर्णरूप का सम्यक् चित्रण किया है। इस ग्रन्थ में जीवन के हल्के - गहरे विभिन्न रंग हैं जिनकी ओर पाठक बरबस होकर आकर्षित होता ही है।

'रामचरितमानस' के बाद प्रसिद्धि की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' की गणना की जाती है। इस ग्रन्थ में उन्होंने भगवान राम से कलियुग के विरोध-शिकायत करने के बहाने व्यक्ति के उद्धार और समाज के मंगल का विधान किया है। 'विनय पत्रिका' में गोस्वामीजी की आत्मा अपने विराट रूप में मुखर दिखाई देती है। इसमें उनके मस्तिष्क और हृदय का चरम विकास दृष्टिगोचर होता है : इसमें कोई अत्युक्ति न होगी, यदि यह कह दिया जाय कि आदिकाल से आधुनिककाल तक आत्मा की संस्कृति की अभिव्यक्ति का ऐसा विशाल प्रयत्न हमें 'विनय पत्रिका' के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। 'विनय-पत्रिका' की कतिपय विशेषताएँ ऐसी हैं जिनके कारण गोस्वामी तुलसीदास भी हिन्दी के कवियों में शीर्ष स्थान के अधिकारी बन जाते हैं।

तुलसी ने काव्यर-चना के प्रति क्रान्तिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है

आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल में युद्ध और सौन्दर्य मुख्यतः काव्य के विषय रहे। इस युग के कवियों ने श्रृंगार रस का वर्णन मुख्य रूप से और वीररस का वर्णन गौण रूप से किया। काव्य-रचना करने वाले चारण या भाट कवि थे, जो किसी न किसी राजा के दरबार में रहा करते थे और उनकी दृष्टि अपने आश्रयदाता और उसके राजदरबार तक ही सीमित रहा करती थी। उनकी वाणी भी उनकी प्रशस्ति तक सीमित रहती थी। परन्तु तुलसीदास ने राज-दरबार एवं राज्याश्रय से दूर रह कर स्वतन्त्र रूप से काव्य-रचना की। उनका यह कथन 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' वस्तुतः उन दिनों के काव्य-जगत में क्रांति का आह्वान था जिन दिनों अन्य कविगण परान्तः सुखाय अथवा स्वान्तः सुखाय कविता कर रहे थे। उन दिनों यह कहना कि मैं 'स्वान्तःसुखाय' काव्य-रचना करता हूं, सचमुच अपार साहस एवं क्रांतिकारी दृष्टिकोण का परिचायक था।

तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' में जीवन का समग्र रूप प्रस्तुत किया है

उनके पश्चात् भक्तिकाल के ज्ञानमार्गी कबीर आदि संत कवियों का समय आता है। इन संत कवियों ने वाह्याडम्बरों का विरोध करके समाज का ध्यान धर्म के प्रामाणिक रूप की ओर आकर्षित अवश्य किया, परन्तु साथ ही संसार की निस्सारता का प्रतिपादन करके जीवन में अकर्मण्यता का प्रसार-प्रचार किया। इनके पूर्ववर्ती एवं समकालीन कृष्णभक्त कवियों ने भी केवल श्रृंगार की

वंशी-ध्वनि सुनाई । परन्तु तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम की भक्ति का प्रचार किया और कर्म-क्षेत्र के सौन्दर्य का सजीव निरूपण किया । तुलसीदास ने समाज को कर्मण्यता एवं कर्त्तव्यशीलता का पाठ पढ़ाया । 'विनय-पत्रिका' के माध्यम से तुलसीदास ने जो जीवन तत्व दिया, वह सर्वथा अप्रतिम है । वह अन्य किसी काल की किसी एक कृति में पूर्णरूप से अभिव्यक्त नहीं हो पाया है । एक बात और है । तुलसी के पूर्ववर्ती, समकालीन तथा परवर्ती कवियों ने अपने काव्य में जिन तत्वों की अभिव्यक्ति की है, उन तत्वों का भी समावेश इनकी 'विनय-पत्रिका' में पाया जाता है । इस प्रकार समस्त जीवन तत्वों का समावेश करके तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत जीवन का एक पूर्णरूप प्रस्तुत किया है ।

तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' में समष्टिगत संघर्ष प्रस्तुत किया है

तुलसी के पूर्ववर्ती वीरगाथाकालीन कवियों ने अपने काव्य में युद्ध और संघर्ष के बड़े ही सजीव वर्णन लिखे, परन्तु उनके द्वारा वर्णित समस्त संघर्ष वैयक्तिक था । रीतिकाल में भी अनेक कवियों—केशव, पद्माकर, भूषण आदि ने—युद्ध और संघर्ष का चित्रण करते हुये ओजपूर्ण वर्णन लिखे । परन्तु ये संघर्ष भी वैयक्तिक ही थे । इसके विपरीत 'विनय-पत्रिका' में कलियुग के विरुद्ध संघर्ष देखने को मिलता है । यह संघर्ष समष्टिगत है । यह संघर्ष व्यक्तिगत स्तर पर भी होता रहता है और समाजगत स्तर पर भी होता रहता है । इस प्रकार तुलसी ने 'विनय पत्रिका' के अन्तर्गत समष्टिगत और शाश्वत संघर्ष का प्रेरणाप्रद वर्णन किया है । उन संघर्षों की आत्मा विरोध एवं उत्तेजना प्रदान करने वाली है । इस संघर्ष का मूल भाव निर्देश है । यह जीवन को शांति और सद्भावना की ओर प्रेरित करती है । 'विनय-पत्रिका' में वर्णित संघर्ष युद्ध के प्रति उत्तेजित नहीं करता है, बल्कि संघर्ष के प्रति उपरान्त करने वाला एवं जीव को युद्ध के प्रति विरक्त बना देने वाला है । अन्य कवियों ने बाहर के शत्रुओं के विरुद्ध लड़ने की उत्तेजना प्रदान की है । विनय-पत्रिका' का रचयिता हमको अपने भीतर बैठे हुये चोरों से युद्ध करने की प्रेरणा प्रदान करता हैं ।

'विनय-पत्रिका' में प्रेम के अलौकिक रूप का चित्रण है

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक शृंगार रस काव्य-ग्रन्थों का मुख्य विषय रहा है । आदिकाल में शृंगार रस वीरता और वीर रस का सहायक रहा, शृंगार के दर्शन समरांगण में हुये । भक्तिकाल के अन्तर्गत निर्गुण भक्त कवियों ने पारलौकिक विरह-वर्णन करते समय उसका मार्मिक स्वरूप प्रस्तुत किया । परवर्ती कृष्णभक्त कवियों ने राधाकृष्ण के विलास की अभिव्यक्ति में उसका उपयोग किया । रीतिकाल में वह वासना के कर्दम से युक्त होकर किसी सीमा तक मलिन हो गया, क्योंकि वह राजे-महाराजों के विलास का साधन बन गया था । आधुनिककाल के कवियों ने भी उसको प्रायः लौकिक काम-भावना की सीमाओं में भी आबद्ध रखा । छायावाद के युग में अवश्य ही कवियों ने विप्रलम्भ शृंगार का निरूपण करते समय उसके अशरीरी रूप की ओर ध्यान दिया और उनको वासना के क्षेत्र से ऊपर उठाने का प्रयत्न किया । सारांश यह कि आरम्भ से अब तक बराबर शृंगार रस प्रायः लौकिक प्रेम की सीमाओं में ही बद्ध रहा है । परन्तु तुलसीदासजी ने शृंगार रस को एक अनोखी दिव्यता प्रदान की । उन्होंने संयोग शृंगार का जैसा मर्यादित रूप प्रस्तुत किया वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । 'विनय-पत्रिका' में हमें शृंगार के पूज्य

बुद्धि समन्वित रूप के दर्शन होते हैं। रहस्यवादी कवियों ने आत्मा-परमात्मा के प्रणय की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की है, परन्तु तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत इस मिलन की अप्रत्यक्ष किन्तु बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। "अन्य भक्त कवियों ने यदि भक्ति की नवीनता हिन्दी काव्य को दी, तुलसी ने उसमें पूर्ण आध्यात्मिकता का मिश्रण करके उसे चरम सीमा को पहुँचा दिया।" तो तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत मानवता को भक्ति के अन्तर्गत भक्ति की मानवता की जिस विशाल भूमिका में प्रतिष्ठा की है, वैसा अन्य कोई कवि नहीं कर सका है। उन्होंने लोकमत को कई स्थानों पर लोक-मान्यता प्रदान की है :

जगत विदित बात ह्वै परी समुझिएधौं अपने लोक कि बेद बड़ेरो।

'विनय-पत्रिका' में तुलसी ने गीत काव्य का मौलिक रूप अवतरित किया है।

गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में भक्ति-भावना की जो 'सांगोपांग' एवं मार्मिक अभिव्यक्ति की है वह अप्रतिम है। वह वस्तुतः भाव-विह्वल भक्त हृदय में उठने वाली भाव-तरंगों की माला ही है। उसके विषय में डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है :

"गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व हिन्दी साहित्य में केवल दो ही कवि थे जिन्होंने गीति-काव्य में भक्ति की भावना उपस्थित की थी। वे दो कवि थे—विद्यापति और कबीर।......शृंगार रस की वासनामयी प्रवृत्ति एकमात्र विद्यापति की कविता की शासिका थी।......कबीर की कविता में आत्मसमर्पण की भावना ही स्थिर नहीं हो सकी। तुलसी के समकालीन कवियों ने पुष्टिमार्ग का अवलम्बन कर भक्ति की विवेचना अवश्य की, किन्तु वह भक्ति सख्य-भाव का सहारा लिए थी। उसमें भक्ति भावना का समावेश होते हुए भी आत्म-समर्पण की भावना नहीं थी। अतएव 'विनय-पत्रिका' का आदर्श मौलिक रूप में साहित्य में अवतरित हुआ।'

तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत अपनी अप्रतिम समन्वयकारी प्रतिभा का परिचय दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास की प्रसिद्धि के कारण उनके दो ग्रन्थ हैं—'रामचरित मानस' और 'विनय-पत्रिका' दोनों ही ग्रन्थों में उन्होंने जीवन का समग्र रूप प्रस्तुत किया है, इन दोनों ग्रन्थों में उन्होंने काव्य और जीवन का जैसा समन्वय प्रस्तुत किया है, वैसा अन्य कवियों में बहुत कम पाया जाता है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामीजी ने जीवन के समस्त रूपों और क्षेत्रों का समन्वय प्रस्तुत किया है। 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत भी हमको इनकी समन्वयकारी प्रतिभा के सम्यक् दर्शन होते हैं, यथा :

(क) प्रबन्ध और मुक्तक काव्य शैलियों का समन्वय—इस ग्रन्थ का प्रत्येक छन्द मुक्तक-काव्य के रूप में अपने आप में स्वतन्त्र है। परन्तु उनके मध्य एक क्रम-विशेष पाया जाता है। इस प्रकार उनमें एक विशिष्ट प्रकार की प्रबन्धात्मकता का समायोजन दिखाई देता है।

(ख) काव्य और संगीत का समन्वय—कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'विनय-पत्रिका' की रचना परिनिष्ठित ब्रजभाषा में हुई है, साथ ही उसका प्रत्येक

पद का भावानुकूल राग-रागनियों में रचा गया है। 'विनय-पत्रिका' का प्रत्येक छन्द काव्य और संगीत के सुखद संयोग का उदाहरण है। काव्य की कोमलता और संगीत की सरसता का समन्वित रूप 'विनय-पत्रिका' में साकार हो उठा है।

(ग) **व्यक्ति और समाज का समन्वय**—'विनय-पत्रिका' में कलिकाल के विरुद्ध तुलसीदासजी की जो आर्त्त पुकार है, उसमें हमें समस्त पीड़ित समाज की वेदना एवं कातरता का स्वर सुनाई देता है। 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामीजी ने अपने उद्धार के बहाने समस्त समाज के उद्धार की प्रार्थना की है। उसमें उद्धार के जिन साधनों का वर्णन किया गया है वे व्यक्ति और समाज दोनों के ही लिये है। गोस्वामीजी ने भगवान राम से भुक्ति और मुक्ति की याचना न करके 'संत सुभाव' की याचना की है। इससे स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' का कवि आध्यात्मिकता के आकाश में इतना अधिक विराट हो गया है कि वह समष्टि की धरती पर उतर आया है।

(घ) **भक्ति और दर्शन का समन्वय**—'विनय पत्रिका' के अन्तर्गत 'भक्ति की भूमि विचारणा' को लक्ष्य करते हुए जीव, जगत एवं ईश्वर का विवेचन किया गया है। वह समस्त दार्शनिक विवेचन करते हुए अन्ततः भक्ति की याचना ही करते हैं। और वह भी कौन सी भक्ति ? वह भक्ति जो साधनसाध्य न होकर प्रभु की कृपा पर अवलम्बित रहती है। एक उदाहरण देखिए :

मैं तोहिं अब जान्यो संसार।

× × ×

देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि कियो विचार।
ज्यों कदली तरु-मध्य निहारत, कबहूँ न निकसत सार।

× × ×

निहित सुनु सठ, हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसीदास प्रभु के दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार।

(ङ) **विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वय**—'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी जी ने प्रायः समस्त प्रमुख देवी-देवताओं की स्तुति की है और अन्ततः रामभक्ति की याचना की है। उन्होंने राम की भक्ति पर समस्त दार्शनिक दृष्टिकोणों से विचार किया है अथवा यह कहिये कि उन्होंने जीव, जगत और ईश्वर पर समस्त दृष्टियों से विचार किया है और सबका फल एक ही 'रामभक्ति की प्राप्ति' बताया है। उनका तो स्पष्ट मत है :

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै।

सारांश यह है कि "**विनय-पत्रिका में बहु देववाद एवं एकेश्वरवाद का, ज्ञान और भक्ति का, द्वैतवाद और अद्वैतवाद का तथा सगुण और निर्गुण का समन्वय प्रस्तुत कर दिया है। समस्त विश्लेषणात्मक विवेचन के त्याग के पश्चात् ही आत्म-साक्षात्कार होता है।**" यह संदेह वास्तव में जहाँ 'विनय-पत्रिका' की मौलिक देन है, वहाँ गोस्वामीजी की समन्वयकारी प्रतिभा का परिचायक भी है। समन्वय की इसी भावना से प्रेरित होकर गोस्वामीजी ने कहा है कि :

अनघ अविच्छिन्न सर्वज्ञ, सर्वेस, खलु सर्वतोभद्रदाताऽसमाकं।
प्रनतजन खेद-विच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीरामसौमित्र-साकं।

(च) **आदर्श और यथार्थ का समन्वय**—गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में

एक ओर भगवान के आदर्श व्यक्तित्व का निरूपण किया है और दूसरी ओर जीव की व्यक्तिगत वेदना तथा समाज की यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है। इस प्रकार हमको 'विनय-पत्रिका' में आदर्श एवं यथार्थ का सुखद समन्वय दिखाई देता है। तुलसी की आँखें आकाश की ओर रहती हैं, परन्तु उनके पैर यथार्थ की भूमि का सम्पर्क क्षण भर को भी नहीं छोड़ते हैं।

(छ) **काव्य और जीवन का समन्वय**—'विनय-पत्रिका' में जीवन का समग्र रूप बड़ी ही कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' में काव्य को जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक धरातल पर इस प्रकार भक्ति-भावना के साथ प्रस्तुत किया है कि उसमें काव्य और जीवन का समन्वय स्वयंमेव हो गया है। वह अपने काव्य-प्रणयन का चरम फल जीवन में शील की उपलब्धि मानते हैं :

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो।
× × ×
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यह पथ रहि, अविचलन हरि-भक्ति लहौंगो।

(ज) **साहित्यिक भाषा और जनभाषा का समन्वय**—'विनय-पत्रिका' में हमको ब्रजभाषा के दोनों रूपों, परिनिष्ठित और सामान्य—के दर्शन होते हैं। उन्होंने उसे विद्वानों एवं सामान्य जनता, दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिये उपयोगी बनाने की दृष्टि से उसमें संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा और बोलचाल की सामान्य ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। 'विनय-पत्रिका' की संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा में हमको संस्कृत-स्रोतों सदृश कोमलकान्त पदावली के दर्शन होते हैं :

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुनं।
नव कंज-लोचन, कंज-मुख, कर कंज, पद कंजारुनं।

बोलचाल की ब्रजभाषा में हमको कृष्णभक्त कवियों जैसी साहित्यिक ब्रज-भाषा के दर्शन होते हैं :

जनम को भूखो भिखारी हो गरीब निवाज।
पेट भरि तुलसिहिं जेंवाइय भगति सुधा सुनाज।
जाको दृढ़ करि हरि अंग कर्‌यो।
× × ×
केहि आचरन भलो मानै प्रभु सो तो न जानि पर्‌यो।
तुलसीदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खर्‌यो।

सारांश यह है कि 'विनय-पत्रिका' में हमें तुलसी की समन्वयकारी प्रतिभा का विभिन्न रूपों में सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

काव्य-कला की दृष्टि से 'विनय पत्रिका' एक अत्यन्त श्रेष्ठ ग्रंथ है

'विनय पत्रिका' में हमको ब्रजभाषा पदों की गेय शैली और अलंकार योजना के एक अत्यन्त पुष्ठ रूप के दर्शन होते हैं। काव्य शास्त्र एवं संगीत शास्त्र का ऐसा समन्वय दुर्लभ है।

निष्कर्ष—भाव प्रवणता भक्ति भावा, साधन पद्धति, संगीतात्मकता आदि प्रत्येक दृष्टि से 'विनय पत्रिका' एक अत्यन्त उच्च कोटि का ग्रन्थ है। इससे हमें

साहित्यिक साधक एवं रामभक्त तुलसी के समन्वित व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। भक्ति एवं काव्य के अभिनव स्वरूप को प्रस्तुत करके लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के कारण 'विनय-पत्रिका' का कवि, कवि पुंगवों की पंक्ति में शीर्ष स्थान का अधिकारी है। ऐसे कवि कुल चूड़ामणि भक्त तुलसी के प्रति हम सादर नत-मस्तक हैं :

जंगम तुलसी-तरु लसै, आनन्द कानन खेत।
जाकी कविता-मंजरी राम भँवर रस लेत॥

कवि रहीम ने ठीक ही कहा था :

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सों सुत होय॥

प्रश्न 35—'विनय पत्रिका' की ऐसी सम्यक् समीक्षा कीजिए कि उसकी समस्त विशेषताएँ स्पष्ट हो जायें।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' का उपक्रम—ग्रन्थकार ने अपना दुःख निवेदन करने के लिए भगवान राम के दरबार में यह अर्जी भेजी थी, जिसमें 'आपबीती' का सविस्तार वर्णन किया है। भगवान के पास सीधे न पहुँच सकने के कारण यह 'पत्रिका' उनके दरबार में पेश कराई गई थी और हनुमान जी ने इसे श्रीराम के सम्मुख प्रस्तुत किया था। गोस्वामी जी को दुःख देने वाला था कलि देव। जब कलि के अत्याचारों से गोस्वामी जी का नाकों दम आ गया, तब उन्हें महाराज रामचन्द्रजी के दरबार में यह पत्रिका भेजनी पड़ी थी। इस सम्बन्ध में यह कथा भी प्रसिद्ध है : एक दिन एक गोहत्यारा पुकारता फिरता था "राम के नाम पर कोई मेरे हाथ का भोजन खाकर मुझे हत्या के पाप से छुड़ा दे।" जैसे ही गोसाईं जी के कानों में उसकी आवाज आई, उन्होंने उसको अपने पास बुलाया, और बड़े प्रेम से उसे अपने साथ खाना खिलाया। इस समाचार को सुनकर काशी के ब्राह्मणों ने बहुत होहल्ला किया। उन्होंने घोर विरोध प्रकट करते हुए गोसाईं जी से पूछा कि उन्होंने उसे अपने साथ भोजन क्यों कराया तथा यह कैसे जाना कि वह हत्या के पाप से मुक्त हो गया। गोस्वामीजी ने सीधा सरल उत्तर दे दिया कि रामनाम के नाते मैंने उसे अपने साथ भोजन कराया और राम नाम के प्रभाव के कारण ही वह मुक्त हो गया क्योंकि रामनाम लेने वालों को कोई किसी प्रकार का पाप स्पर्श नहीं कर सकता। पण्डितों को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि हम तुम्हारी बात का विश्वास एक ही प्रकार कर सकते हैं। यदि इस हत्यारे के हाथ से विश्वनाथ जी का नन्दी खा ले, तो हम मान लेंगे कि यह गोहत्या के पाप से मुक्त हो गया है। ऐसा ही किया गया। कहते हैं कि सबके देखते-देखते पत्थर के नन्दी ने उस व्यक्ति के हाथ से भोजन ग्रहण कर लिया। पण्डित गोस्वामी जी के प्रति नत मस्तक हो गये और वे सबके सब तथा अन्य अनेक व्यक्ति राम भजन करने लगे। रामनाम के पुण्य प्रभाव से सांसारिक पाप तो कटने ही चाहिए थे। फलतः कलिदेव बहुत चिढ़ गये। वह प्रत्यक्ष रूप से गोस्वामी जी को डाँटने लगे और भाँति-भाँति से सताने लगे। गोस्वामी जी बहुत दुःखी होने लगे। एक दिन उन्होंने केशरी-किशोर हनुमानजी के सम्मुख अपना दुःख-निवेदन किया। हनुमान जी ने कहा कि—इस समय कलिदेव का ही साम्राज्य है और हम कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं।

पर हाँ, यदि तुम श्री रघुनाथ जी की सेवा में चिट्ठी लिख दो, तो हम उसे उनकी सेवा में उपस्थित कर देंगे और भगवान् राम अवश्य ही क्रूरकर्मा कलि को दण्ड देंगे। कहते हैं, इसी पर गोसाईं जी ने यह 'विनय-पत्रिका' लिखी। हम नहीं कह सकते हैं कि इस जनश्रुति में कितना तथ्य है। परन्तु इतना अवश्य है कि कलि-काल के पापों से छुटकारा पाने के लिए ही गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' लिखी थी। हम चाहे स्थूल प्रयोजन लें अथवा आध्यात्मिक प्रयोजन लें—'विनय-पत्रिका' की रचना के पीछे एक ही उद्देश्य दिखाई देता है—रामनाम के पुण्य-प्रभाव से व्यक्ति के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा है। वह विनय-पत्रिका का उद्देश्य भक्ति के लोक-कल्याण-कारी रूप की प्रतिष्ठा मानते हैं। उपर्युक्त कथा के अनुसार भी 'विनय-पत्रिका' की रचना का उद्देश्य कलियुग को दण्ड दिलाना माना गया है। कलियुग को दण्डित करने का अर्थ है, पाप और अत्याचार का विनाश करके सद्धर्म की स्थापना करना। गोहत्यारा वाली कथा का अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि 'विनय-पत्रिका' की रचना का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है। हमारे विचार से स्थूल दृष्टि रखने वाले ही इस बाह्य प्रयोजन की चर्चा करते हैं। गोस्वामीजी ने न 'रामचरित-मानस' में और न 'विनय-पत्रिका' में कहीं भी 'मोक्ष' की कामना नहीं की है। उन्होंने तो केवल राम की भक्ति की ही आकांक्षा एवं याचना की है। भक्ति का अर्थ तुलसी के निकट धर्माचरण एवं समाज-कल्याण है। गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर हम देखते हैं कि सदाचार का संदेश ही 'विनय-पत्रिका' की रचना के मूल में स्थित है। सम्पूर्ण मानव-समाज में धर्म एवं सदाचार की स्थापना जिसकी चरम परिणति है।

'विनय पत्रिका' का वर्ण्य-विषय

'विनय-पत्रिका' वस्तुतः एक अर्जी अथवा प्रार्थना पत्र है। इसको भेजने वाले हैं गोस्वामी तुलसीदासजी और पाने वाले हैं महाराज श्री रामचन्द्रजी। अतः यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का प्रधान वर्ण्य-विषय 'विनय' है। यह ग्रन्थ वास्तव में विनय-सम्बन्धी उक्तियों का कोष है।

गोस्वामी तुलसीदास के रूप में एक त्रिताप संतप्त वह जीव परमात्मा के चरणों में पत्रिका के माध्यम से अपना दुःख निवेदन करता है, परमात्मा को परम दयालु पिता के रूप में देखता है। दुःख निवृत्ति के साधनों की खोज में वह आत्मा-लोचन करता है। उसका एक के बाद दूसरा साधन-सोपान दृष्टिगोचर होता है और अन्ततः दुःखों से उसकी निवृत्ति होती है। देवी-देवताओं की खुशामद करनी पड़ती है जिसमें इनकी पत्रिका आगे की ओर बढ़े। फिर वह माता जानकी से निवेदन करते हैं कि वह उपयुक्त अवसर देख कर अर्जी मजूर करा दें। अन्ततः अर्जी मंजूर हो जाती है। लोग भले ही कुछ भी कहें—गोस्वामी जी को इसकी चिन्ता नहीं है। उन्हें राम की कृपा के अतिरिक्त कुछ चाहिए ही नहीं। उन्हें न ऊधो का लेना है और न माधो का देना है :

> लोग कहैं पोच, सो न सोच न संकोच मेरे,
> ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं।

भक्ति के क्षेत्र में दैन्य भक्तों का बहुत बड़ा बल माना जाता है, जिसकी

प्रेरणा आलम्बन अथवा इष्ट का महत्व है। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन मनन करने योग्य है। यथा—"भक्ति का मूल तत्व है, महत्व की अनुभूति। इस अनुभूति के साथ ही दैन्य अर्थात् अपने में लघुत्व की अनुभूति का उदय होता है।" गोस्वामी जी ने इस अनुभूति की अभिव्यक्ति बड़े ही मार्मिक शब्दों में की है :

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ?

आचार्य शुक्ल ने इस अनुभूति का विश्लेषण करते हुए आगे लिखा है कि "प्रभु के महत्व के सामने होने ही अन्य के हृदय में अपने लघुत्व का उदय होता है।" संक्षेप में 'विनय-पत्रिका' के वर्ण्य विषय को निम्नलिखित प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

(1) विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति।
(2) तीर्थ स्थानों के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति।
(3) संसार के प्रति आसक्ति के भयंकर परिणामों की चर्चा और उस आसक्ति का विरोध।
(4) विभिन्न प्रकार से मन का उद्बोधन।
(5) मन को वश में करने के उपायों का वर्णन।
(6) राम-नाम का महत्व, राम के प्रति पूर्ण समर्पणयुक्त भक्ति भावना निरन्तर बनी रहने वाली मन की चंचलता और निष्कलुष जीवन।
(7) राम की शरणागति, उसका प्रभाव एवं महत्व।

गोस्वामी जी का स्पष्ट कथन है कि राम की भक्ति बहुत कठिन है : यह कोई बच्चों का खेल नहीं है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि आई।

इसके लिये विवेक, वैराग्य और संत-संगति की आवश्यकता है। तुलसीदास उन्हीं की प्राप्ति की अभिलाषा करते हुये कहते हैं कि—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरन्तर मन-क्रम-वचन-नेम निबहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, परगुन, औगुन न कहौंगो।
परिहरि देह-जनित चिंता, सुख-दुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यह पथ रहि, अविचल हरिभक्ति लहौंगो।

इस प्रकार के सदाचारयुक्त जीवन का प्रतिपादन की वस्तुतः 'विनय-पत्रिका' का मूल संदेश है। मानव-समाज जिस अनुपात में इस जीवन को अपनाता जाए, उसी अनुपात में उसकी विषमताएँ दूर होती चली जायें। भक्तों की भाषा में इसी को राम-कृपा की प्राप्ति कहा गया है। राम की कृपा की प्राप्ति से तुलसी का अभिप्राय इसी प्रकार के जीवन से है जो मानव विकास की चरम परिणति है। यही भक्ति है, यही मुक्ति है।

जन-समाज के पतन का कारण नास्तिकता है। जगत को हरि शून्य देखने के कारण ही समाज की यह दुर्दशा हुई है। जो मनुष्य भगवान के चरणों से विमुख हैं, वे अभागे हैं, वे नरकरूप होकर संसार में जी रहे हैं :

सूकर स्वान सृगाल सरिस जन, जनमत जगत जननि-दुखी लगी।

गोस्वामीजी बार-बार सांसारिक विषयों की भर्त्सना करते हैं, उन्हें त्याज्य बताते हैं। विषयों में लिप्त मानव, मानव नहीं रह जाता है। राम की भक्ति का अभिप्राय ही यह है कि मानव वीतराग या समरस बन जाये। भक्ति की प्राप्ति के लिये सांसारिक आकर्षण का परित्याग प्रथम सोपान है पहली शर्त है :

अब नाथहिं अनुराग जागु जड़, त्याग दुरासा जीते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घीते।

यदि जगत के साथ नाता जोड़ना ही है, तो राम के नाते से ही जोड़ना उचित है :

नाते नेह राम के मनियत पूज्य सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं।

गोसाईं जी मन को बार-बार समझाते हैं कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा राम के चरणों में अनुरक्त रहे। वे श्री रामचन्द्रजी की भक्ति में अपने अनन्य भाव को अनेक रीतियों से दृढ़ करते हैं :

करम-उपासन ज्ञान-वेद-मत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहिं ज्यों सूझत रंग हरो।

तुलसीदास की एकमात्र कामना है अपने आदर्श इष्टदेव के सान्निध्य की प्राप्ति। जीवन का एकमात्र उद्देश्य परोपकार है। यही वेदों का सार है :

काज कहा नर-तनु धरि सार्‌यो।
पर-उपकार सार स्रुति को जो धोखेहु न विचार्‌यो।

तुलसी के राम भी अकारण हितकारी हैं : इसीसे राम के सान्निध्य के सम्मुख वह योगियों के मोक्ष को अवहेलनीय मानते हैं :

खेलिबे को मृग तक तरु किंकर ह्वै, रावरो राम ह्वै रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचुपैहौं, या बिनु परम पदहु दुख दहिहौं॥

अंगीकृत सेवक की दशा ही कुछ और होती है। भगवान राम ने तुलसी को अपना लिया है अथवा उन्हें राम-भक्ति की प्राप्ति हो गई है—इसका क्या प्रमाण है? इसके लिये उन्हें क्या किसी प्रमाण-पत्र की आवश्यकता है? नहीं। यदि स्वयं राम भी कहें कि मैंने तुझे अपना लिया है, तब भी तुलसी आसानी से मानने वाले नहीं हैं। वह जानते हैं कि अंगीकृत सेवक के लक्षण ही कुछ और होते हैं। जब तक उन लक्षणों का व्यवहार में प्रकटीकरण न हो जाय, तब तक अपनाया जाना कैसा? नाथ! अंगीकृत भक्त की दशा विलक्षण होती है। मैं उसी दशा की याचना करता हूँ :

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाउ विषयनि लायो तेहि सहज नाथ सों नेह छांड़ि छल करिहै।
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सो चहुँ विधि चातक ज्यों एक टेक ते नहिं टरिहै।

हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि-लाभ दुख सुख सबै सम चित हित अनहित कलि कुचाल परिहरिहै।
प्रभु-गुन सुनि मन हरिषिहै नीर नैननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनन्द उमंगि उर भरिहैं।

यही भक्ति की पूर्णता है, मानव-विकास की चरम परिणति है, मानवता की परम उपलब्धि है। इसी की प्राप्ति के लिए गोस्वामी जी ने यह पत्रिका लिखी है। इस विनय-पत्रिका के माध्यम से तुलसी ने अहंभाव को दूर करके मानवता को इस कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर होने के लिये प्रेरित किया है। अध्यात्म के आवरण में इतने महान क्रान्तिकारी संदेश को प्रस्तुत करने में तुलसी सदृश कवि ही समर्थ हो सकते हैं। आत्मचेतना विकास का संदेश ही वस्तुतः 'विनय-पत्रिका' का वर्ण्य विषय अथवा प्रतिपाद्य है।

शरण की भिक्षा माँगते-मांगते गोसाईं जी 'विनय-पत्रिका' लिखना समाप्त कर देते हैं। लिखने को अब रह ही क्या गया? 'चिट्ठी' दरबार में पहुँचती है। मुसाहिब पहले से सधे ही हुये थे। लक्ष्मण जी ने 'विनय-पत्रिका' को सेवा में पेश कर दिया। श्री रघुनाथजी पत्रिका पढ़कर तुलसीदास के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। सब लोग एक स्वर से बोल उठते हैं—जो लिखा है, वह अक्षरशः ठीक है। हम उसको जानते हैं—उसकी रहन-सहन रीति-पद्धति ऐसी ही ऋजु—सरल हैं। कलिकाल से पीड़ित होने पर भी उसने अपने धर्म-कर्म का परित्याग नहीं किया है। सुनकर भगवान मुसकरा दिये। बोले ठीक है—मैंने भी उसके बारे में सुन रखा है:

"बिहँसि राम कह्यो, सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।"

बस, फिर क्या, काम बन गया। तुलसी सदा सर्वदा के लिए राम-रूप हो गये:

"मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ-हाथ सही है।"

विनय-पत्रिका का रचनाक्रम

'विनय-पत्रिका' के रचना-क्रम के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि इस ग्रन्थ की रचना प्रस्तुत रूप में नहीं की गई थी। तुलसी ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर फुटकर पदो की रचना की थी और बाद में स्वयं तुलसी ने अथवा उनके किसी प्रशंसक ने—उनके ही सामने अथवा उनके बाद—इन पदों का संग्रह एवं सम्पादन करके 'विनय-पत्रिका' को वह रूप प्रदान किया होगा जिस रूप में वह आज कल उपलब्ध है। इसके विरुद्ध विद्वानों के दूसरे वर्ग का कहना है कि तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' की रचना प्रस्तुत क्रमबद्ध ग्रन्थ के रूप में ही की थी। 'विनय-पत्रिका' के अन्तिम पदों से भी यही ध्वनि निकलती है। यथा:

विनय-पत्रिका दीन की, बापु ! आपु ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाँचो।

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी जी ने राज-दरबार में अर्जी भेजने की प्रचलित पद्धति का अनुसरण किया है। पहले देवी-देवता रूप समस्त मुसाहिबों की खुशामद की है, क्योंकि बिना मुसाहिबों के साधे मिलाये अर्जी हुजूर में पेश नहीं हो पाती है। परम्परानुसार सर्वप्रथम गणेश जी की वन्दना की है, फिर जन्म-जन्मातर के

अविद्याजनित अज्ञानांधकार को दूर करने के लिए मरीचिमाली (सूर्यदेव) की स्तुति की है। फिर राम-नाम के एकमात्र ज्ञाता और जगद्गुरु शिव का गुणगान किया है। साथ ही भयंकर रौद्र मूर्ति भैरव की भी स्तुति की है, जिसमें, कलियुग भयभीत हो उठे। तदनन्तर पार्वती, गंगा, यमुना, काशी और चित्रकूट का यशोगान किया गया। चित्रकूट का वर्णन बड़ा ही विषद और हृदयग्राही है। इसके उपरान्त राम के परम आत्मीय, सतत् सजग सेवक हनुमान जी की वन्दना आरम्भ होती है। हनुमान जी तुलसी के खास वकील हैं। इसके सामने तुलसी अपनी समस्त मनोव्यथा खोलकर रख देते हैं। तुलसीदास इनके साथ एक तरह से बेतकल्लुफी का व्यवहार करते हैं—"ऐसी तोहि न बुझिये हनुमान हठीले" आदि वाक्यों द्वारा तुलसी खूब ढिठाई करते हैं। हनुमान जी से रामभक्ति की याचना करते हुये वह संक्षेप में भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की स्तुति करते हैं। दरबार के समस्त मुसाहिबों की ओर से निश्चिन्त हो जाने के पश्चात् वह माता जानकी के सामने पहुँचते हैं और उनसे बड़े ही करुण शब्दों में प्रार्थना करते हैं कि कभी उपयुक्त अवसर देखकर प्रभु के सामने मेरी करुण कथा की चर्चा चलाने की कृपा करें।

कबहुँक अम्ब, अवसर पाई।
मेरियौ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाई।

अब वह भगवान राम की ओर उन्मुख होते हैं और पद संख्या 43 में संक्षिप्त रामचरित मानस का वर्णन करते हैं जिसमें सम्पूर्ण रामायण की कथा आ जाती है। इसके बाद 45वें पद में पुनः रामचन्द्र की वन्दना, 48वें पद में श्री विन्दु-कृष्ण वन्दना, 52वें में दशावतार की कथा यथा 61, 62, 63 पदों में श्री विन्दु-माधव की वन्दना की गई। इसके पश्चात् 'विनय-पत्रिका' का वास्तविक रूप हमारे सामने आता है। तुलसी अपने स्वामी राम का महत्व अपना दैन्य कलमषता, निरीहता आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। यह क्रम पद संख्या 276 तक चलता है। इन पदों में विनय की सातों भूमिकाएँ आ जाती हैं। इन पदों में मन, जीव, जगत, माया, कलिप्रभाव आदि के वर्णन देखने को मिलते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि पत्रिका को प्रभु के सम्मुख प्रस्तुत कौन करे? सब सेवक हैं। अगुआ कोई नहीं होना चाहता है। सब एक दूसरे के मुँह की ओर देखते हैं। लक्ष्मण सबसे अधिक मुंहलगे सेवक थे। उन पर महाराज रामचन्द्रजी का अपरिमित स्नेह है। अतः सबकी रुचि देखकर वही पत्रिका पेश करते हैं, इस सिफारिश के साथ कि :

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही हैं।
कलिकालहुँ नाथ! नाम सों प्रतीति एक किंकर की निबही है।

सबके सब लक्ष्मण की हाँ में हाँ मिला देते हैं :

सकल सभा सुनि लै, उठी जानि रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की देखत गरीब की साहब बाँह गही है।

राम सब कुछ समझ जाते हैं। वह मुस्कराकर कह देते हैं कि हाँ यह बात (सीता से) पहले सुन चुका हूँ और 'विनय-पत्रिका' को अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं :

बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।

तुलसी का काम बन जाता है। वह आनन्द मग्न होकर राम के सम्मुख मस्तक झुका देते हैं :

मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।

विनय-पत्रिका समाप्त हो जाती है।

'विनय-पत्रिका' एक आत्मविश्लेषण है—'रामचरितमानस' के पश्चात् गोस्वामी जी का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विनय-पत्रिका' है। कुछ अर्थों में तो यह रामचरितमानस से भी अधिक महत्वपूर्ण है। वियोगी हरि द्वारा सम्पादित 'विनय-पत्रिका' की 'हरितोषिणी टीका' के परिचय के अन्तर्गत आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि **"चरम महत्व के भव्य मनुष्य-ग्राह्य रूप के सम्मुख भव विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो जो भाव तरंग उठती हैं, उन्हीं की माला यह 'विनय पत्रिका है।'**

वियोगी हरि के मतानुसार 'विनय-पत्रिका' में हमें गोस्वामीजी के भक्त एवं दार्शनिक के रूप में सच्चे दर्शन होते हैं। उक्त टीका के 'वक्तव्य' के अन्तर्गत वियोगी हरि ने लिखा है, **"रामचरितमानस में तो वह उपदेश के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु गुरु गोविन्द रूप में उनका दर्शन 'विनय-पत्रिका' में होता है। उनका स्पष्ट कथन है कि यद्यपि यह कृति उतनी लोकप्रिय नहीं है, पर भक्तप्रिय अवश्य है। यह कृति ज्ञानियों की सिद्धान्त-मंजूषा है, पण्डितों का पांडित्य-निष्कर्ष है, योगियों की समाधि-स्थली है एवं प्रेमियों और भक्तों की मानस तरंगिणी है। उसकी आराधना लाख में एक से बनी हैं।"**

कलियुग द्वारा सताये जाने पर गोस्वामी जी ने यह 'पत्रिका' त्रिलोकेश्वर श्री रामचन्द्र महाराज के दरबार में भेजी थी। उस समय गोस्वामीजी मानो समस्त मानव जाति के प्रतिनिधि बन गये थे।

इस ग्रन्थ में वस्तुतः गोस्वामीजी का आत्म-विश्लेषण है। किन्तु उनका यह आत्म-विश्लेषण सामान्य मानव का आत्म-विश्लेषण है। इस कारण वह सम्पूर्ण मानव समाज का आत्म-विश्लेषण बन जाता है। इसे हम सही अर्थों में तुलसी की, 'स्वान्तः सुखाय एवं परजन हिताय', रचना कह सकते हैं।

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी जी का सुख-दुख विशाल मानव-समाज का सुख-दुख बनकर अजस्र रूप में वह निकलता है। वियोगी हरि के शब्दों में "इस ग्रन्थ में जीव का दैन्य, असामर्थ्य, लघुत्व और स्वामी का पुरुषार्थ, सामर्थ्य और महत्व विलक्षण दिव्य उद्गारों में अभिव्यक्त किया गया है।"

स्वार्थ में लिप्त मानव सांसारिक भोगविलास में डूब कर किस भयानक मानसिक अशांति का अनुभव करता है, इसकी अभिव्यक्ति 'विनय-पत्रिका' में जिस मार्मिकता के साथ की गई है, वह देखते ही बनती है। विशेषता यह है कि उस तथ्य का विश्लेषण गोस्वामी जी ने स्वयं अपने आप को केन्द्र एवं माध्यम बनाकर किया है। भौतिक ऐश्वर्य ही वस्तुतः कलियुग है। उसमें लिप्त एवं उसके प्रति आसक्त मानव की करुण मानसिक दशा का सूक्ष्म एवं मार्मिक उद्घाटन देखने के लिए जिज्ञासु को 'विनय-पत्रिका' का अध्ययन करना चाहिये।

संसार के मानव की पीड़ा के दो पक्ष हैं शारीरिक अथवा भौतिक तथा मानसिक। दोनों पक्ष वाह्य रूप में भिन्न प्रतीत होते हुए भी अन्ततः अथवा विराट रूप में अभिन्न हैं। 'विनय-पत्रिका' में दोनों पक्षों का चित्रण हैं और साथ ही समाधान भी प्रस्तुत है।

भौतिक दृष्टि से मानव अन्न, वस्त्र आवास तथा अन्य स्थूल आवश्यकताओं के अभाव में प्राय: त्रस्त और दु:खी बना रहता है। दूसरी ओर मानसिक दृष्टि से मानव सदाचार को तिलांजलि देकर वासनाओं की तृप्ति अथवा प्रयोजनों की सिद्धि में दिन रात लिप्त रहता है, और वह सदैव असंतोष एवं अतृप्ति की अग्नि में दग्ध होता रहता है, इस प्रकार मानव दोनों ही प्रकार के अभावों द्वारा सदैव ग्रस्त रहता है और उसको जीवन में सुख-शांति का अनुभव कभी नहीं हो पाता है। गोस्वामी जी के मतानुसार इन दोनों प्रकार के कष्टों से मुक्ति प्राप्त करने का एक ही उपाय है—राम की भक्ति। राम की भक्ति उनके मतानुसार राम नाम का उच्चारण अथवा घण्टा-घड़ियाल तक ही सीमित नहीं है, उनकी भक्ति सदाचार की अपेक्षा करती है। 'विनय-पत्रिका' में शारीरिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति प्रदान करने वाली इसी सदाचार मूलक राम-भक्ति का प्रतिपादन किया है। गोस्वामी जी के राम और धर्म अभिन्न हैं—राम का विरोध धर्माचरण को तिलांजलि दे देना है। गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका के अन्तर्गत यह स्पष्ट स्थापना की है कि राम भक्ति का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति सदाचारी बन कर निष्काम कर्म के प्रति अनुरक्त होकर सरल एवं सादा जीवन व्यतीत करे।

इस प्रकार गोस्वामी जी ने 'विनय-पत्रिका' में व्यक्ति को केन्द्र मान कर समाज-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। यदि व्यक्ति का सुधार हो जायगा, तो समाज का सुधार स्वयंमेव हो जायगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति सदाचारी बन जाए, तो समाज में व्याप्त अन्याय, अत्याचर, अभाव आदि का स्वत: नाश हो जाए और सम्पूर्ण मानवता, सुख शांति-सन्तोष एवं आनन्द से पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगें। भक्ति के लोक-कल्याण-रूप की प्रतिष्ठा 'विनय-पत्रिका' की चरम उपलब्धि है।

'विनय-पत्रिका' की भक्ति-पद्धति

'विनय-पत्रिका' भक्तों के हृदय का सर्वस्व है। इसमें भक्ति की निर्मल धारा आद्यान्त व्याप्त है। वियोगी हरि के शब्दों में—भक्ति पथ की सांगोपांग पद्धति इसमें दिखाई गई है। 'विनय-पत्रिका' में निरूपित भक्ति पद्धति को समझने के लिए आचार्य रामचन्द शुक्ल का यह कथन पर्याप्त होना चाहिये—"**शील के असामान्य उत्कर्ष को प्रेम और भक्ति का आलम्बन स्थिर करके तुलसी ने सदाचार और भक्ति को अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया है।**" इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम और सदाचार की चरम परिणति का ही दूसरा नाम भक्ति है। प्रेम के लिए आलम्बन का ऐसे गुणों द्वारा विभूषित होना आवश्यक है जो प्रेम को अपने प्रति आकर्षण कर सकें। आकर्षण करने के लिए शारीरिक एवं आत्मिक दोनों ही कोटियों के गुण अपेक्षित हैं। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते है कि जब तक आलम्बन सौन्दर्य एवं शील समन्वित नही होगा, तब तक वह आकर्षण का केन्द्र बन ही नहीं सकेगा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि तुलसी के राम आकर्षण हेतुक समस्त गुणों से पूर्णत: संयुक्त हैं। राम के व्यक्तित्व में निहित असामन्य शील सदाचार का प्रेरक है। ऐसे शील समन्वित एवं सदाचार प्रेरक व्यक्तित्व की ओर आकर्षित होने वाला व्यक्ति ही राम की भक्ति का अधिकारी है। जो ऐसे असामान्य उत्कृष्ट व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित न हो, वह अवश्य ही मानवोचित गुणों से रहित होना चाहिये :

सुनि सीतापति शील सुभाऊ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो खेहर खाउ।

सिसुपन तें पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाऊ।
कहत राम बिधु बदन रिसोहैं, सपनेहु लखो न काऊ।

तुलसी ने शील-प्रधान राम की भक्ति के लिए भक्त में भी शील का उत्कर्ष आवश्यक माना है और शील के उत्कर्ष के लिये साधन बताए हैं—सत्संग और राम के प्रति अनन्य प्रेम, साराँश यह है कि सच्ची भक्ति का लक्षण यह है कि भक्त अपने इष्टदेव के अनुरूप अपने आपको ढालने का प्रयत्न करे। तुलसी ने भक्त की इसी इच्छा को बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है :

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो।

× × ×

परिहिरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि लहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो।

और अन्त में उन्होंने भक्ति प्राप्ति का लक्षण भी इसी प्रकार निर्धारित किया है कि "हौं अपनायो तब जानिहौं जब मन फिर परिहै।"

'विनय-पत्रिका' में वर्णित भक्ति पद्धति के अन्तर्गत तुलसी ने विवेक, वैराग्य दैन्य, अनन्यता, समर्पण निष्कामना तथा आत्म-स्वरूप के बोध का वर्णन किया है। भक्ति का सामाजीकरण, मानव की महत्ता तथा मोक्ष की अवहेलना—ये 'विनय-पत्रिका' की भक्ति-पद्धति की ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं और जिनके कारण तुलसीदास लोकनायक के पद पर प्रतिष्ठित हो सके। राम लोक का कल्याण करने वाले हैं। अतः उनके भक्त को भी लोक-कल्याण अथवा जन-कल्याण करने वाला होना चाहिये। भक्त तुलसी की एकमात्र कामना है कि :

खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौ रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचुपैहौं, या बिनु परम पदहुँ दुख दहिहौं।

"यह अनुभूति-मार्ग या भक्ति-मार्ग बहुत दूर तक तो लोक-कल्याण की व्यवस्था करता दिखाई पड़ता है, पर और आगे चल कर वह निस्संग साधक को सब भेदों से परे ले जाता है।"

विनय-पत्रिका में दार्शनिक सिद्धान्त

'विनय-पत्रिका' एक भक्ति ग्रन्थ है। तुलसी की भक्ति विरति-विवेक समन्वित है। अतः उसमें यथास्थान दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा यथास्थान आ जाना स्वाभाविक है। 'विनय-पत्रिका' में वर्णित दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा के आधार पर विद्वान तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्त को स्थिर करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत गोस्वामीजी ने प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त का उल्लेख किया है और उसको भक्ति का हेतु बताया है साथ ही उन्होंने अपने आपको किसी विशेष सिद्धान्त से कहीं भी नहीं बाँधा है।

तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इसके प्रायः दो वर्ग हैं। एक वर्ग तो इन्हें शंकर अद्वैत मतावलम्बी मानता है। इस वर्ग के मुख्य विद्वान हैं—महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा, डा० बल्देव प्रसाद मिश्र तथा पं० श्रीधर पन्त। दूसरे वर्ग के विद्वान है—डा० रामकुमार वर्मा, वियोगी हरि तथा डा० गुलाब राय। ये विद्वान स्वामी जी को विशिष्टाद्वैतवादी मानते है। आचार्य

पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार, "तुलसी **सिद्धान्तत: अद्वैतवादी हैं, परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में वह भेद करके चलना ठीक समझते हैं—यानी व्यावहारिक दृष्टि से वह विशिष्टाद्वैतवादी हैं।"**

गोस्वामी तुलसीदास ने किसी वाद विशेष का प्रतिपादन नहीं किया है, उनके विचार से समस्त वाद आंशिकरूप से सत्य ही हैं और भक्ति के क्षेत्र में वे सहायक न होकर बाधक ही बनते हैं। दर्शन मस्तिष्क या तर्क का विषय है जो 'वाक्य-ज्ञान' मात्र करा सकता है। अनुभूति या अनुभव तो भक्ति का कार्य-क्षेत्र है यथा :

केशव कहि न जाइ का कहिए।

× × ×

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति, दुख पाइय यहि तनु हेरे।

× × ×

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।

गोस्वामी जी ने यथा अवसर वैराग्य की पुष्टि के लिये विभिन्न मतों से सहारा लिया है :

जौं निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख संसय लोक अपारा।

× × ×

विटप मध्य पुत्रिका, सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए।
मन महँ लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए।

इस पद में सत्कार्यवाद और अद्वैतवाद का सम्मिश्रण दिखाई देता है। इसी प्रकार निम्नलिखित पद में संसार की असारता प्रतिपादित की गई है :

मैं तोहि अब जान्यों, संसार।

देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किए विचार।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'पर इस कछू नाहिन' को मायावाद का सा नहीं समझना चाहिए।

भक्ति पद्धति के अन्तर्गत हम निवेदन कर चुके हैं कि तुलसी मोक्ष की अवहेलना करके उसी जगत् में रहने की कामना करते हैं जो भगवान राम की क्रीड़ास्थली है :

खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचुपैहौं, या बिनु परम पदहुँ दुख दहिहौं।

अत: यह कहा जा सकता है कि जगत् के मिथ्यात्व के प्रति इंगित करने वाले पद वस्तुत: मायावाद का प्रतिपादन नहीं करते हैं। उनका वास्तविक अभिप्राय जगत के बाह्यरूप के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना ही है। **इस सम्बन्ध में आचार्य पं०** रामचन्द्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है—"**तुलसीदासजी भक्तिमार्गी थे, अत: उनकी वाणी में भक्ति के गूढ़ रहस्यों को ढूँढ़ना ही अधिक फलदायक होगा, ज्ञानमार्ग के सिद्धान्त को नहीं।"**

(तुलसी ग्रन्थावली भाग 3)

हमारा विचार यह है कि समस्त दार्शनिक सिद्धान्त मूलतः अद्वैत भावना को ही लेकर चलते हैं। जन सामान्य तक पहुंचने के लिए विभिन्न आचार्य विभिन्न प्रकार की वाणी का प्रयोग करते हैं और फलस्वरूप विभिन्न 'वादों' की प्रतिष्ठा हो जाती है। अतः गोस्वामीजी भी सिद्धान्ततः अद्वैतवाद को ही मानते थे। अद्वैतवाद के प्रति आस्था रखने वाले तुलसी इतने श्रेष्ठ भक्त किस प्रकार बन गए अथवा उन्होंने अद्वैतवाद और भक्ति भावना का समन्वय किस प्रकार किया, इसका समाधान हम आगे चलकर करेंगे।

विनय-पत्रिका का कलापक्ष

भाषा—विनय-पत्रिका की भाषा संस्कृतनिष्ठ व्रजभाषा है : बीच-बीच में अवधी और बुन्देलखण्डी के शब्दों का सुन्दर पुट है। भाषा सर्वथा भावों की अनुगामिनी है। वियोगीहरि के शब्दों में **"मुहावरों का मेल, स्वाभाविक अनुप्रासों की छटा, वाक्य-विन्यास-पटुता, उक्ति-सौन्दर्य, ओज, प्रसाद और सुसंगठित शैली यह सब बातें उनकी भाषा में स्वभावतः पाई जाती हैं।...विनय पत्रिका की भाषा सजीव भाषा की उत्कृष्ट धारा कही जा सकती है।......कहीं-कहीं पर तो कादम्बरी के पढ़ने का स्मरण आ जाता है।......आदि के पदों की भाषा निस्सदेह कुछ क्लिष्ट है।"**

'विनय-पत्रिका' की भाषा में पद-पद पर प्रसाद और माधुर्य गुण झलकते हुए देखे जा सकते हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहीं भी तनिक भी शैथिल्य दृष्टिगोचर नहीं होता है।

गोस्वामीजी ऊंचे से ऊंचे दार्शनिक सिद्धान्तों को भी जनसाधारण की भाषा में लिख सकते हैं। ऐसे स्थलों पर हमें कबीर की वाणी का स्मरण हो जाता है। देखिए निम्नलिखित पद में वेदान्त सदृश उच्च सिद्धान्त को बोल-चाल की भाषा में किस सामर्थ्य के साथ अंकित किया गया है :

राम कहत चलु राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिन भव-बेगार महं परिहो, छूटत अति कठिनाई रे।
× × ×
विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाउं बहोरा रे।
मंद विलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।
× × ×
मारग अगम संग नहिं संबल नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसीदास भव-त्रास हरहु अब, होउ राम अनुकूला रे।

'विनय-पत्रिका' में हमको प्रान्तीय शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी के शब्दों का भी सफल प्रयोग दिखाई देता है। **'गोसाई' जी को जहां जिस भाषा के शब्दों की आवश्यकता जान पड़ी, वहां उन्होंने उनको रखा है। कतर-ब्योंत भी की, तो अपनी छाप लगाकर। मतलब यह कि उन्होंने भाषा पर अपना पूर्ण अधिकार सिद्ध कर दिखाया।"**

'विनय-पत्रिका' में गीत-तत्व

'विनय-पत्रिका' की रचना पद शैली में हुई है। **इसके समस्त पद गेय हैं और** उनमें विभिन्न राग-रागनियों का सफल निर्वाह हुआ है। **'विनय-पत्रिका' गीति-काव्य की एक सफल रचना है।**

'विनय-पत्रिका' के पदों को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है- (1) वे पद जिनमें भावुकता की प्रधानता है। इन पदों में हमको सूरदास और मीराबाई की तन्मयता एवं उनके हृदयगत उल्लास के दर्शन होते हैं। (2) दूसरी कोटि के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनमें आत्मीयता की अपेक्षा सामाजिकता का आग्रह अधिक है तथा जिनमें गोसाई जी दार्शनिक विवेचन, सामाजिक चित्रण आदि करने लग जाते हैं। ऐसे पदों में गीतिकाव्य का सहज, स्वाभाविक सौन्दर्य अवश्य ही तिरोहित हो जाता है। परन्तु इसके अधिकांश पद ऐसे हैं जिनमें आत्मानुभूति अथवा मार्मिक अनुभूतियों की सहज अभिव्यंजना दिखाई देती है :

जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे।
काको नाम पतितपावन जग केहि अति दीन पियारे।

'विनय-पत्रिका' के अनेक पदों की भाषा भाव के अनुरूप है और उनमें संगीत का सुन्दर समावेश हुआ है। ऐसे पद पर्याप्त लोक-प्रिय हैं। दैय एवं शरणागति की व्यंजना करने वाले पद 'विनय-पत्रिका' को भक्तों का सर्वस्व बनाए हुए हैं। 'ऐसो को उदार जगमाही' आदि पद संगीत समारोहों में जान डाल देते हैं—ये संगीतज्ञों के कण्ठ-हार हैं :

'विनय-पत्रिका' का अलंकार-विधान

'विनय-पत्रिका' प्रधानतः भक्ति-ग्रन्थ है ; काव्य-चमत्कार इसमें सर्वथा गौण है। इसमें काव्य-चमत्कार के गौणरूप को देखकर कतिपय विद्वानों ने तो इसमें अलंकारों को देखना तक नहीं चाहा है और इस अभाव का कारण भी यह कहकर कि 'विनय-पत्रिका' केशवदास की रामचन्द्रिका नहीं है, इस प्रसंग पर पटाक्षेप ही कर दिया है। हमारा मत है कि 'विनय-पत्रिका' में भावुकता और चमत्कार का बहुत ही सुन्दर संयोग हुआ है। उनके प्रत्येक पद में हमको अनुप्रास की सुन्दर छटा तो दिखाई ही पड़ती है, साथ ही उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक जैसे सादृश्य मूलक अलंकारों का मनोहारी प्रस्फुटन भी दिखाई देता है। इतना ही नहीं, कई पदों में तो विरोधमूलक अलंकारों का स्वाभाविक प्रस्फुटन देखते ही बनता है। देखिए तुलसी के निम्नलिखित प्रसिद्ध पद में 'विभावना' और 'विशेषोक्ति' का एक साथ सफल निर्वाह—

केशव कहि न जाइ का कहिए।

× × ×

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं तनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै, भीति दुख पाइय, यहि तनु हेरे।

"विनय-पत्रिका में" उक्ति वैचित्र्य और अर्थ-गौरव

किसी बात को सीधे-सादे ढंग से न कहकर, घुमा-फिरा कर कहना और इस प्रकार उसके अर्थ-को अधिक उत्कर्षपूर्ण एवं मार्मिक बना देना ही उक्ति वैचित्र्य कहा जाता है। ऐसी उक्तियों में अर्थ-गाम्भीर्य तो स्वयंमेव आ ही जाता है। इस प्रकार की उक्तियों में लक्षणा-व्यंजना शब्द-उक्तियों का तथा वक्रोक्ति अलंकार का सहारा लिया जाता है। निम्नलिखित पद में तुलसी राम को अनाथ-पति की पदवी देते हुए मानो बड़ा भारी एहसान करते हैं :

हौं सनाथ ह्वै हों सही, तुमहू अनाथ पति जो लघुतहि न भितैहो ।

अगर राम तुलसी की लघुता से भयभीत न हों तो इनको अनाथपति की पदवी मिल सकती है । क्या ही विचित्र युक्ति है । गुरुता और विशालता से भयभीत होने वाली बात तो समझ में आ सकती है. परन्तु यहाँ लघुता से भयभीत होने की चर्चा है । इसमें अपना लघुत्व और प्रभु का महत्व—दोनों एक साथ बड़े ही साभिप्राय रूप में व्यक्त हैं । वाक्-चातुर्य का सुन्दर उदाहरण है । उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा अर्थ-गौरव की वृद्धि स्वयंमेव हो गई है ।

गोसाईं जी प्रभु-कृपा की प्रतीक्षा करते-करते हैरान हो जाते हैं । अब वह खिसिया जाते हैं और भगवान से कहने लगते हैं कि अच्छा मैं अपनी सी पर आता हूँ और तुम्हारी मिट्टी छाँटता हूँ ।

हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मोपै परिहास एते ।

अब तक तो तुलसीदास तुम्हारी कृपा दृष्टि की राह देखत. रहा । परन्तु अब, वह तुम्हारे नाम का पुतला बांधेगा, क्योंकि उससे अब यह उपहास सहा नहीं जाता है । मैं भी पुतला लिए चारों ओर फिरूँगा और लोगों को बता दूंगा कि ये ही हैं सूम-शिरोमणि अयोध्या नरेश महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी ! बात यह है कि लोग तालियां बजाकर मेरे राम भक्त होने का मजाक उड़ाने लगे हैं । वे कहते हैं कि देखो इस पाखण्डी तुलसी को ! बना फिरता है राम भक्त, और मारा-मारा फिरता है—इस तरह···आदि । सौ बात की एक बात । मुझे अपना लो । उपर्युक्त इन दो पंक्तियों में जो उक्ति चमत्कार है—जो अर्थ-गौरव व्यंग्य है वह देखते ही बनता है ।

विनय-पत्रिका में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ हमको उक्ति-वैचित्य और अर्थ-गौरव का सुखद संयोग दिखाई देता है । इन उक्तियों में केवल शाब्दिक चमत्कार नहीं है, बल्कि उत्कृष्ट कोटि के अर्थ-गाम्भीर्य का समावेश है । उक्ति और अर्थ का ऐसासंतुलित समावेश अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है ।

'विनय-पत्रिका' सुनिश्चित रूप से एक उच्च कोटि की रचना है । भक्ति काव्य और रीति-काव्य दोनों ही क्षेत्रों नें उसका स्थान बहुत उच्च है ।

———

अध्याय 8

विनय-पत्रिका में भाव-सौंदर्य

प्रश्न 36—"विनय-पत्रिका में शान्त रस प्रधान है।"—इस कथन की विवेचना करते हुये रस-योजना की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—तुलसी की 'विनय-पत्रिका' भावानुभूति का अथाह सागर है। शान्त रस की उत्तुंग-तरंगें जन-मानस का प्रशासन कर उसे समस्त विकारों से रहित कर लोक-कल्याण की ओर प्रेरित करती और व्यक्ति को समष्टि में लीन कर देती हैं। अतः 'विनय-पत्रिका' में शान्त रस प्रधान है। यत्र-तत्र हास्य-शृंगार, करुण, भयानक वीर, रौद्र आदि रसों के प्रसंग भी मिल जाते है। परन्तु ये प्रसंग ऐसी छोटी-छोटी भाव-धारायें हैं, जो शान्त रस की विशाल भाव-धारा में मिलकर उसे विराट और गम्भीर रूप प्रदान करती हैं। यहाँ हम 'विनय-पत्रिका' में यत्र-तत्र अन्य रसों के प्रसंगों पर विचार करने के पश्चात् शान्त रस का सम्यक् विवेचन करेंगे।

शृंगार-रस—शृंगार-रस का स्थायी भाव रति है: 'विनय-पत्रिका' में ईश्वर-विषयक रति मिलती है। तुलसी ने इष्टदेव राम के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन किया है। यह अनन्त सौन्दर्य ईश्वर-विषयक रति को पुष्ट करता है:

"नव कंज लोचन कंज-मुख कर-कंज पद कंजारुनं।
कन्दर्प अगणित अमित छवि नव-नील नीरद सुन्दरं।"

यह रति-भाव प्रभु-भक्ति को उद्दीप्त करने वाला होने के कारण शान्त रस का ही पोषक है।

वीर-रस—'विनय-पत्रिका' के कई पदों में वीर रस की व्यंजना हुई है। राम दुःख दैन्य को दूर करने वाले और कलियुग को दण्ड देने वाले हैं। कवि स्थान-स्थान पर उनके इस शौर्य का स्मरण करता है। इसके अतिरिक्त हनुमान की विनय में भी वीर रस की व्यंजना हुई है। कवि वीर-रूप में हनुमान का स्मरण करता है:

"जयति जय सत्रु करि-केसरी सत्रुहन।"

× × ×

"जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन खल बरजोर को।
वेद-पुरान प्रगट पुरुषारथ सकल-सुभट-सिरमौर को।
उथपे थपन, थपे उथपन, विबुधवृन्द-बन्दि छोर को।
जलधि लाँघि दहि लंक प्रबल दल दलन निसाचर घोर को।
जाको बाल विनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।"

रौद्र रस—भैरव और दुर्गा की स्तुति में रौद्र रस की झाँकी मिल जाती है:

"चंड भुज-दण्ड खंडनि बिहंडनि महिष,
मुण्ड-मद भंग कर अंग तोरे।
सुंभ-निसुंभ भीस कुरंग-केशरिनि,
क्रोध-बारिधि अरि-वृन्द बोरे।"

वीर और रौद्र दोनों रस इष्टदेव सम्मत होने से शान्त-रस के सहायक बनकर ही आये हैं : इसी प्रकार भैरव आदि की स्तुति में भयानक-रस की व्यंजना में कुछ पंक्तियाँ मिल जाती हैं : कलियुग के अत्याचार से भयभीत कवि ने जिन पदों में राम से रक्षा की प्रार्थना की है उनमें भी भयानक रस की व्यंजना हो गई है, परन्तु यहाँ इस व्यंजना को शान्त रस से अलग करके नहीं देखा जा सकता है ।

करुण रस—गोस्वामी जी ने कलियुग के अत्याचारों से स्वयं तथा समस्त समाज को प्रताड़ित देखकर उद्धार के लिए पत्रिका भेजा । अतः अनेक पदों में स्वयं की तथा समाज की विपदा ग्रस्त करुण स्थिति का वर्णन किया है । ऐसे पदों से करुण रस की व्यंजना हुई है । उदाहरण के रूप में निम्न पद द्रष्टव्य है :

"पाहि-पाहि ! पाहि रामभद्र रामचन्द्र ।
सुजस स्रवन सुन आयो हौं सरन ।।
दीनबन्धु ! दीनता-दरिद्र-दोष-दुख ।
दारुन - दुःसह - दर - दरप - हरन ।।"
कहाँ जाउं कासौं कहौं दीन की ।"

हास्य रस—तुलसीदास ने मर्यादित स्निग्ध हास को अपने प्रत्येक काव्य में स्थान दिया है । 'शान्त रस' का काव्य होने के कारण 'विनय-पत्रिका' में हास्य-योजना के अधिक अवसर नहीं थे, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि 'विनय-पत्रिका' में हास्य रस की व्यंजना का अभाव है । व्याजस्तुति अलंकार के द्वारा निम्न उदाहरण में हास्य रस की सुन्दर व्यंजना की गई है :

"बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद-बड़ाई भानी ।
निज घर की वरवात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री सारदा सिहानी ।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत, हौं आयौ नकवानी ।
दुखी दीनता दुखियन के दुख जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी ।
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंगयुत, सुनि विधि की बर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसकानी ।।

यह सत्य है कि 'विनय-पत्रिका' में किसी रस और किसी भी भाव-व्यंजना का अभाव नहीं है, परन्तु इनकी स्थिति उन लघु सरिताओं के समान है, जो 'शान्त-रस-सागर' में विलीन हो जाती हैं और शान्त रस-सागर अपने विस्तार और गहराई में लहराता हुआ रह जाता है ।

शान्त रस—'विनय-पत्रिका' में शान्त रस प्रधान है । शान्त रस का स्थायी-भाव 'शम' या 'निर्वेद' होता है । 'विनय-पत्रिका' में अशान्त शान्त-रस का महा-सागर उमड़ता हुआ दिखाई देता है । शास्त्रीय दृष्टि से शान्त रस के विभावानुभाव, संचारी भाव आदि समस्त अंग 'विनय-पत्रिका' के प्रायः प्रत्येक पद में मिल जाते हैं । 'विनय-पत्रिका' में विभावानुभाव का शास्त्रीय विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है :

आश्रय—स्वयं भक्त कवि तुलसीदास।

आलम्बन—अनन्त शील, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त शक्ति-युक्त, दीनदयालु, दीन प्रतिपालक श्री रामचन्द्र।

उद्दीपन—कलियुग की प्रताड़ना।

अनुभाव—समस्त कवि-कथन।

संचारी भाव—ग्लानि, गर्व, दैन्य, मोह, हर्ष, अमर्ष, व्याधि, शंका, चिन्ता आदि।

स्थायी भाव—शम या निर्वेद। एक उदाहरण लीजिए :

"मन पछितैहै अवसरु बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु हीते॥
सहसबाहु दस बदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबही तें।
अन्तहु तोहि तजेंगे पामर! तू न तजै अबही तें॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड त्याग दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी ते॥

यहाँ कवि की आत्म-प्रताड़णा में शान्त रस की सम्पूर्ण निष्पत्ति देखी जा सकती है।

आश्रय—कवि स्वयं है। वह मन को सम्बोधन कर रहा है। संसार और मानव-जीवन की निस्सारता आलम्बन है। सहसबाहु, दसबदन' आदि नृपों का काल बली से न बचने का चिन्तन उद्दीपन के अन्तर्गत है। कवि-कथन—"सुत-बनितादि जानि स्वारथरत' 'अन्तहु तोहि तजैंगे पामर, अब नाथहि अनुरागु' अनुभाव के अन्तर्गत है। ग्लानि, चिन्ता, 'विबोध, आदि संचारी भाव हैं।

'विनय-पत्रिका' के प्रायः सभी पद संसार की असारता का चित्र उपस्थित कर विभावानुभाव और संचारियों के सहयोग से निर्वेद स्थायी भाव को पुष्ट करते हुये शान्त रस की निष्पत्ति करते हैं। शायद ही ऐसा कोई पद मिले, जिसमें निर्वेद को पुष्ट करने वाला कोई न कोई संचारी भाव न हो। कुछ उदाहरण लीजिये :

गर्व—"तुलसिदास अनायास राम-पद पइहैं प्रेम पसाहु।"
चिन्ता—"कलिमय ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी।"
दैन्य—"दिन दुरदिन, दिन दुरदसा दिन दुख दिन दूषन।
जबलौं तू न बिलोकिहै रघुवंश विभूषन।"
विषाद—"मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो॥
ग्लानि—"कहाँ जाऊँ, कासों कहौं, कौन सुनै दीन की।"

'निर्वेद' उद्दीप्त होने पर स्वयं ही अनुभावों की व्यंजना होने लगती है—"सजल नयन गदगद गिरा गहवर मन पुलक शरीर।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' में शान्त रस अंगी है। शान्त सर की गम्भीर और विस्तृत धारा आद्यान्त प्रवाहित हुई है। अन्य रसों की भी प्रसंगवश व्यंजना हुई है परन्तु वे शांत रस को पुष्ट करने में ही सहायक

हुए हैं। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। 'विनय-पत्रिका' यथार्थ में 'शान्त-रस' का महासागर है, जो अपने में निमग्न होने वाले के हृदय का प्रक्षालन कर उसे लोक-कल्याण में प्रवृत्ति करता हुआ ईश्वरोन्मुख करता है।

प्रश्न 37—भावाभिव्यक्ति की गहनता विस्तार और भाव सौन्दर्य की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न 38—विनय-पत्रिका के पद-लालित्य अर्थ गाम्भीर्य और काव्य गुणों पर प्रकाश डालते हुए यह दिखाइए कि किन विशेषताओं के कारण विनय पत्रिका को भक्तों के हृदय का हार कहा जाता है।

जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परिहित-निरत निरन्तर मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देह-जनित-चिन्ता दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो॥"

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने को दीन और समस्त साधनों से हीन कहकर सर्व-शक्तिमान प्रभु की जो विनय की है, उसमें भाव-सौन्दर्य की वेगवती अबाध धारा प्रवाहित हुई है :

"बाप, बलि जाउँ आपु करिये उपाय सो।
तेरे ही निहारे परै हारेहु सुदाउँ सो॥
तेरे ही सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरे ही बुझाए बुझै अबुझ बुझाउ सो॥

गोस्वामी तुलसीदास के प्रभु पतित-पावन हैं, उन्होंने व्याध, गनिका अजामिल आदि असंख्य पापियों का उद्धार किया है। जान और अनजान में नाम लेकर पापी तर गए, ऐसे प्रभु श्री रामचन्द्र की शरण में आकर तुलसीदास प्रार्थना करते हुए भावुक हृदय को उड़ेल देते है :

"मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित, तुम पतित-पावन दोउ बानक बने॥
व्याध, गनिका, गज, अजामिल, साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गनै॥
जानि नाम अजान लीन्हे, नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये अपनें॥"

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी 'विनय-पत्रिका' राम की सेवा में भेजी है, परन्तु बिना किसी की सिफारिश के वह स्वीकृत कैसे हो। इसके लिए वे सीता माता की शरण लेते हैं। सीता-माता अवसर पाकर सब प्रकार दीनहीन तुलसी की प्रभु राम को स्मृति दिलाती हुई कह दें कि यह तुलसी उन्हीं का दास कहलाकर अपना उदर भरता है। माता सीता की इस वचन सहायता से राम अवश्य कृपा करेंगे और दीन तुलसी की बिगड़ी बात बन जायगी। इस प्रसंग में गोस्वामी तुलसीदास ने सीता माता की विनय करते हुए वात्सल्य की भाव-धारा प्रवाहित की है :

"कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्यायबी कछु करुन-कथा चलाइ ॥
दीन सब अंग-हीन, छीन, मलीन अधी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी-दास कहाइ ॥
बूझिहैं, 'सो है कौन' कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥
जानकी जग-जननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव, तुव नाथ के गुन गाइ।"

गोस्वामी तुलसीदास अपने इष्टदेव राम से कृपा की याचना कर अपना हृदय ही खोलकर रख देते हैं :

"कबहुँ कृपा करि रघुवीर! मोहूँ चितैहौ।
भलो बुरो जान, आपनो जिय जानि दयानिधि।
अवगुन अमित रितैहौ॥
जनम-जनम हौ मन जित्यौ, अब मोहिं जितैहौ।
हौं सनाथ ह्वै हौं सही, तुमहुँ अनाथ-पति
जो लघुतहि न भितैहौ।"

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने हृदय का भाव-सागर ही उड़ेल दिया है। बिना किसी कृत्रिमता के हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति 'विनय-पत्रिका' के समान अन्य किसी काव्य में नहीं मिलती। दैन्य-निवेदन और भक्ति के क्षेत्र में तुलसी से कोई ऐसा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव भी नही बचा जिसकी कि उन्होंने 'विनय-पत्रिका' में अभिव्यक्ति न की हो। निम्न उदाहरण में असहायावस्था की जैसी करुण-भाव-धारा प्रवाहित हुई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। वे कहते हैं कि "हे राम! मुझसे अपने लोचन न फेरो, क्योंकि तुम्हारे बिना लोक परलोक मे कहीं भी कोई अपना नही है। यह तुलसी अगुन, अलायक और अधम है। इसे स्वार्थी साथियों ने "तिजरा को सो टोटक" की तरह छोड़ दिया है। उन्होंने फिर इसकी ओर उलटकर भी नहीं देखा :

"तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहुँ राम बिनु रावरे लोकहूँ परलोकहुँ,
कोउ न करै हित मेरो।
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन तज्यो 'तिजरा को सो टोटक',
औचट उलटि न हेरो।"

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' तुलसी के काव्यों में सर्वोत्कृष्ट—भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से तुलसी की 'विनय-पत्रिका' उनके समस्त काव्यों में अनन्य-तम है। 'बरवै-रामायण', 'कवितावली', 'गीतावली', 'रामचरित-मानस' में भी गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति के अन्तर्गत दैन्य आदि का तथा प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता की अभिव्यक्ति की है, परन्तु इसका चरमोत्कर्ष 'विनय-पत्रिका' में ही हुआ है। 'कवितावली' मे अपने को लघु बतलाकर प्रभु के गौरव का प्रतिपादन किया है :

"हौं तो सदा खर को असबार, तिहारोइ नाम गयंद चढ़ायो।"

'विनय-पत्रिका' के निम्न पद में इसी भावानुभूति का चरमोत्कर्ष मिलता है।

"राम सो बड़ो हैं कौन मो सो कौन छोटो !
राम सो खरो है कौन मो सो कौन खोटो ?

'बरवै-रामयण' और कवितावली में भी गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी दीनता व्यक्त की है :

"केहि गिनती महँ गिनती जन बन घास।
नाम जपत भए तुलसी तुलसीदास।"

—बरवै रामायण

"साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम हों गुलाम राम साहिको।"

इसी दैन्य-भाव का उत्कर्ष 'विनय-पत्रिका' के निम्न पद में द्रष्टव्य है।

"राम को गुलाम रामबोला राख्यो नाम,
काम यहै नाम द्वै, कबहुँ कहत हौं।"

गोस्वामी तुलसीदास की प्रारम्भिक अवस्था बड़ी दयनीय अवस्था में व्यतीत हुई। उनको पेट के लिए दर-दर ठोकरें खानी पड़ी। 'कवितावली' में वे स्वानुभूति दैन्य को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं :

"जाति के, सुजाति के कुजाति के पेटागिवस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।"

—कवितावली

इसी भाव को विनय-पत्रिका' में उन्होंने अधिक मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है :

"फिरयो ललात बिनु नाम उदर लगि,
दुखए दुखित मोहि हेरे।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' तुलसी-काव्य में ही सर्वोत्कृष्ट नहीं है, अपितु इस क्षेत्र में हिन्दी के अन्य काव्यों में भी उसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। 'विनय-पत्रिका' भक्ति-भाव का लहराता हुआ सागर भक्त जन-मानस को भाव-विभोर बना देता है। भावानुभूति में सर्वत्र, सहजता, निर्मलता और पवित्रता है। 'विनय-पत्रिका' प्रभु के समक्ष भेजने में तुलसी ने जो अभिव्यक्ति-पद्धति अपनाई उसमें भक्त-हृदय की विभिन्न दशाओं का चित्रण मार्मिक अनुभूति के साथ-साथ हुआ है। बिना किसी छिपाव के हृदय की ऐसी सरल और सहज अभिव्यक्ति अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

प्रश्न 39—दैन्य-भाव की विशद अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न 40—'विनय-पत्रिका' की विनय पद्धति की क्रमिक विवेचना कीजिए।

उत्तर—विनय-प्रधान काव्य होने के कारण 'विनय-पत्रिका' में दैन्य-भाव की अभिव्यक्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है। तुलसी के दैन्य और विनय का आदर्श चातक है। "राम-नाम-नव-नेह मेह को मन हठि होऊ पपीहा" के रूप में उन्होंने भक्ति और विनय का आदर्श प्रस्तुत किया है : उनके समान न तो कोई दीन है और न राम के समान दूसरा दीनदयाल ही है। वे 'आरति हर समर्थ प्रभु के

समक्ष चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुये दीन-भाव को लेकर उपस्थित होते हैं और कहते हैं :—

"दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।"

उनकी यह अभिलाषा है कि प्रभु एक बार कह दें कि 'तुलसीदास' मेरे है :

"तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये ! तुलसीदास मेरो।"

प्रभु की सामर्थ्य और भक्ति के दैन्य को 'विनय-पत्रिका' जैसी अभिव्यक्ति दुर्लभ है :

तू दयालु, दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज—हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं, आरति-हर तोसों॥"

गोस्वामी तुलसीदास को अपने दैन्य का अनुभव है। उनके पास ज्ञान, विराग, भक्ति आदि साधन के रूप में नहीं हैं, साथ ही साथ रात-दिन लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध, घेरे रहते हैं। उन्हें तो केवल प्रभु-शरण का ही अवलम्ब है। तभी तो वे 'सवेरे ही सरन' में आ पड़े हैं :

"ताहि ते आयो सरन सवेरे।
ग्यान, विराग, भगति-साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे :
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैनि-दिन घेरे।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारहि फेरे।
दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत सेतु श्रुति टेरे।"

गरीब-निवाज राम के समक्ष तुलसीदास 'जनम के भूखे भिखारी' हैं। तभी तो वे विनय करते हैं :

"पेट भरि तुलसिहिं जेंवाइय भगति-सुधा-अनाज।"

राम के समान दूसरा कोई दीनबन्धु उनको नहीं दीखता, जिसके समक्ष वे अपनी दीनता सुनाएँ।

"दीनबन्धु दूसरो कहँ पावों ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइहै, केहि दीनता सुनावों॥"

राम के समान कोई दीनबन्धु और तुलसी के समान कोई दीन नहीं है

"तुम सम दीनबन्धु न दीन कोऊ मो सम सुनहु नृपति रघुराई।"

वे इतने दीन हैं कि उनसे अपनी दीनता कही तक नहीं जाती, परन्तु राम के सामने वे इसलिए कहते हैं, क्योंकि उन्हें कहने में सुख का अनुभव होता है—

"कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सो, बलि दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, अपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता अपनी पाप पीनता।

'विनय-पत्रिका' में भक्ति के अन्तर्गत दीनता और विनम्र चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है। विनय-पद्धति का एक क्रमिक विकास को 'विनय-पत्रिका' का मुख्य

विषय है। गोस्वामी जी अपनी वेदना के रूप में समस्त समाज और मानव-मात्र की वेदना लेकर उपस्थित हुये हैं। वे कलि के कुचालों से प्रताड़ित जन-समाज के प्रतिनिधि के रूप में 'विनय-पत्रिका' राम के दरबार में भेजते हैं। इसमें किसी राजा के समक्ष अर्जी प्रस्तुत करने के समस्त दरबारी क्रम को गोस्वामी तुलसीदास ने सामने रखा है। सबसे पहले वे राजा रामचन्द्र के दरबारी देवताओं की प्रार्थना कर उनसे 'राम-सीता' को हृदय में बसाने का बरदान माँगते हैं :

माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं राम-सिय मानस मोरे ॥''

तुलसीदास जानते हैं कि खुशामद करके दरबारियों को मिला देने मात्र से ही इष्ट-सिद्धि की सम्भावना नहीं है। इसमें राजाधिराज श्री रामचन्द्र जी की अनुकूल कृपा भी अपेक्षित है। परन्तु राजा रामचन्द्र के समीप स्वयं 'विनय-पत्रिका' सुनाने का उनमें साहस नहीं है। इसके लिये वे उनके अनन्य सेवक हनुमान और आत्मीय लक्ष्मण का आश्रय लेते हैं और अन्त में उनकी अर्द्धांगिनी से 'बचन-सहाय' करने की प्रार्थना करते हैं। इस विषय-पद्धति से उनको सन्तोष होता है कि राम ने उनकी विनय-पत्रिका सुनकर उस पर सही कर दी है :---

''मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ ! नाम सों प्रतीति-प्रीति एक कंकर की निबही है ॥
सकल सभा मुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की, देखत गरीब की साहब बाँह गही है ॥
बिहँसि राम कह्यो, सत्य है सुधि मैं हु लही है।'
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।''

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी जन्म-जन्मान्तर की करुण गाथा और समाज की व्यथा एक विशेष विनय-पद्धति में रखी है। आत्म-ग्लानि और आत्म-दोष के वर्णन से सारी 'विनय-पत्रिका' भरी हुई है :

''मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो।

× × ×

''माधव मो समान जग माहीं।
सब विधि हीन, मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं ॥''

× × ×

''नाथ सो कौन बिनती कहि सुनावौं।
त्रिविधि अनगिनत अवलोकि अघ आपने,
सरस सनमुख होत सकुचि सिर नावौं।''
''अति लालची काम किंकर मन मुख रावरो कहावौं।
तुलसी प्रभु जियकी जानत सब, अपनी कछुक जनावौं ॥''

× × ×

''कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सो बलि दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी अपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप पीनता।''

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' में तुलसी ने अपने हृदय की समस्त व्यथा खोलकर रख दी है। यह व्यथा-वेदना तत्कालीन युग-समाज का प्रतिनिधित्व करती है : प्रारम्भ से अन्त तक गोस्वामी जी ने जो विनय-पद्धति अपनाई है, वह प्रभावपूर्ण सामाजिक दरबारी नियमों से अनुशासित और मनोवैज्ञानिक है। इसमें उनकी विनय-भावना चरमसीमा पर पहुँच गइ है। भक्ति-भाव के साथ दैन्य और आत्म-ग्लानि का ऐसा विराट चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रश्न 41—सिद्ध कीजिए कि 'विनय-पत्रिका' आत्म-चरित्र-प्रधान काव्य है।

अथवा

प्रश्न 42— 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामीजी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है। क्या इस ग्रंथ को आत्म-चरित-प्रधान कहा जा सकता हैं ? यदि नहीं तो इस रहस्य का उद्घाटन कीजिये।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति इतनी अधिक मुखर है कि समस्त काव्य आत्मचरित्र प्रधान लगने लगता है। भक्त तुलसी का मानस कलिकाल की कुचाल से संत्रस्त है। वे स्वयं अपने बल से रक्षा करने में अपने को सक्षम न मानकर भगवान राम की शरण में जाते हैं और अपने निस्तार की अभिलाषा के साथ-साथ राम से विनय करते है कि वे कलिकाल को 'बरज' दें, जिससे वह अपनी कुचालों से समाज को संत्रस्त करना छोड़ दे। तुलसी की यही महान् भावना आत्म-चरित्र-प्रधान 'विनय-पत्रिका' को व्यक्तिपरक से समाज-परक बना देती है। तुलसी का दैन्य, करुणा, विपत्ति, सन्ताप आदि उनके मात्र न रहकर समाज के हो जाते हैं इस प्रकार वे समाज और युग का प्रतिनिधित्व करते हुए 'विनय-पत्रिका राम के दरबार में प्रेषित करते हैं।

कवि सामाजिक होता है, उसकी अभिव्यक्ति के रूप में समाज के सुख दुःख और आशा-निराशा ही व्यक्त होती है। अभिव्यक्ति में समाज ही को वाणी मिलती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी जिस हीन दशा, वेदना, करुणा और हीनता का वर्णन किया है, वह तत्कालीन समाज की व्यथा, वेदना, करुणा और हीन दशा है। तुलसी की आत्मानुभूति इतनी सच्ची और गहरी है कि 'विनय पत्रिका' आत्म-चरित्र प्रधान लगने लगती है। कुछ उदाहरण लीजिए :

"जनम गयो बादिहिं बर बीति।
परमारथ पाल न पर्‌यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति।।
खेलत खात लरिकपन गा चलि, जोबन जुबतिन लियो जीति।
रोग-वियोग-सोग-सम सकुल, बड़ि वय वृथहि व्यतीति।।
राग-रोग ईर्षा विमोह बस, रुची न साधु-समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुपति के भइ न राम-पद प्रीति।।
हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दुसह भव भीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिये, समुझि बिरद की रीति।।

× × ×

"कछु ह्वै न आय गयो जनम जाय।
अति दुरलभ तन पाइ, कपट तजि, भजे न राम मन, बचन, काय।

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चोगुने चाय।
जोबन जुर जुवती-कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय।।
मध्य वयस धन हेतु गँवाई, कृषी बनिज नाना उपाय।
राम-विमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि-बासुर तयो तिहँ ताय।।
सेये नहिं सीतापति सेवक साधु सुमति भलि भगति भाय।

× × ×

जिन्ह लाग निज परलोक बिगार्‌यो ते लजात होत ठाढ़ ठाँय।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं, तर्‌यो गयंद जाके एक नाँय।।

इन तथा इस प्रकार के अन्य अनेक पदों को विशुद्ध आत्म-चरित्र का उदाहरण नहीं माना जा सकता। प्रथम पुरुष में होते हुए भी ये कथन व्यक्तिगत नहीं हैं। इनमें समष्टि की व्यथा और आत्म प्रतारणा मुखरित है। तुलसी ने जो अपनी हीनता और दीनता का चित्र अंकित किया है, वह व्यक्तिगत उन्हीं का न होकर तत्कालीन समस्त समाज का है। गोस्वामी तुलसीदास ने जो कुछ 'स्वान्तः सुखाय' लिखा, वह 'बहु जन हिताय' ही है।

यह सत्य है कि 'विनय-पत्रिका' के अधिकांश पद आत्मपरक है, परन्तु उनमें समाज और संसार-चक्र में पड़े मनुष्यों की हीनता और दीनता का भी वर्णन है। निम्न पद से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास कोई व्यक्तिगत बात न कहकर ऐसी सामान्य बात कहते हैं, जो समस्त समाज की है :

"छुधा-व्याधि बाधा भइ भारी :
बेदन नहिं जानै महतारी।।"
जननो न जाने पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।।
सोई करै विविध उपाय, जातें अधिक तुव छाती जरै।।
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
व्यतिरेक तोहि निरदल ! महा खल ! आन कहु को सहि सकै।।"

तुलसी का यह कथन जीव-मात्र के लिए है निम्न पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास ने वृद्धावस्था का वर्णन किया है। इसके आधार पर कुछ लोग 'विनय-पत्रिका' को आत्म-प्रधान मानते हैं।

"देखत ही आई बिरुधाई।
जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई।।
ताके गुन कछु कहे न जाहीं।
सो अब प्रगट होउ तनु माहीं।।"
सो प्रगट तनु जरजर जराबस, व्याधि मूल सताबई।
सिर कंप इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, वचन काहु न भावई।।
गृहपालहुँ ते निरादर, खान-पान न पावई।
ऐसिहु दसा न विराग तहं तृष्णा-तरंग बढ़ाबई।।

उपर्युक्त पंक्तियों को तुलसीदास की वृद्धावस्था मात्र से सम्बन्धित कर लेना भ्रान्ति-मात्र है। इसमें सामान्य जीव की वृद्धावस्था की दशा का चित्रण हुआ है। बुढ़ापे की कोई भी इच्छा नहीं करता, किन्तु वह आ धमकता है। समस्त शरीर पर छाकर उसे जीर्ण-शीर्ण बना देता है। इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं।

जिन आत्माभिव्यक्ति के कथनों के आधार पर 'विनय-पत्रिका' को आत्म-चरित्र-प्रधान घोषित कर दिया जाता है, वे कवि द्वारा भक्ति के आदेश में कहे गये हैं। भक्ति के चरमोत्कर्ष में दैन्य-भावना स्वतः ही आ जाती है। निम्न पदों में गोस्वामी तुलसीदास अपनी हीनता और दीनता दिखाते हुए अभिव्यक्ति करते हैं। उसमें आत्मपरकता मात्र नहीं है। वह तो भक्त-मात्र के हृदय की अभिव्यक्ति ही मानी जायगी :

"कैसे देहुं नाथहि खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत मूढ़ता अस मोरि॥"

× × ×

"हे प्रभु ! मेरोई सब दोसु।
सीलसिंधु, कृपालु नाथ अनाथ आरत-पोसु॥
वेष बचन विराग मत अन्य अवगुननि को कोसु।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि 'विनय-पत्रिका' में कवि ने प्रथम पुरुष में अपने दैन्य और व्यथा की अभिव्यक्ति की है, किन्तु कवि का व्यक्ति समष्टि में लीन है। उसकी व्यथा और दीनता समष्टि की व्यथा और दीनता है। आत्माभिव्यक्ति करते हुए भी तुलसी के सामने से लोक-हित ओझल नहीं होने पाया है। अपनी व्यथा और वेदना को व्यक्त करते हुए वे यह भी कहते हैं कि 'राज-समाज-कुसाज' हो रहा हैं, 'नीति, प्रतीति और प्रीति' के लिए समाज में कोई स्थान नहीं रहा है। प्रजा पतित होकर पाखण्ड और पापरत हो रही है, शांति, सत्य, शुभ कीर्ति घट गई हैं, कुरीति, कपट खलई बढ़ गई है। साधु सीद रहे हैं, साधुता सोच में पड़ी हुई है। खल विलास कर रहे हैं और खलई बिलस रही है। कामधेनु रूपी धरती कलि रूपी कसाई के हाथ में पड़कर विवश हो गई है। उसमें बोया हुआ बीज नहीं जमता। [पद संख्या 139] यह सब कुछ वर्णन सारे समाज का ही है न कि केवल तुलसीदास के जीवन मात्र का। अतः विनय-पत्रिका' को केवल आत्म चरित्र-प्रधान काव्य नहीं माना जा सकता। उसमें व्यक्ति में ही समष्टि समाई हुई है।

———

अध्याय 9

विनय-पत्रिका में तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा

प्रश्न 43—'विनय-पत्रिका' तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।''—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी जी की सर्वोत्कृष्ट समन्वयात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है। काव्य और जीवन का ऐसा सन्तुलित समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। 'रामचरित-मानस' जीवन, समाज, काव्य, संस्कृति आदि समस्त क्षेत्रों में समन्वय की विराट चेष्टा है, परन्तु 'विनय-पत्रिका' में भी इस समन्वयात्मक दृष्टि का अभाव नहीं है।

विनय-पत्रिका में समन्वय का रूप

निम्नलिखित विभिन्न क्षेत्रों में 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास की समन्वयात्मक प्रतिभा देखी जा सकती है :

1. व्यक्ति और समाज,
2. आदर्श और यथार्थ,
3. काव्य और जीवन,
4. काव्य और संगीत,
5. विभिन्न वादों का समन्वय,
6. दर्शन और भक्ति,
7. प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का समन्वय,
8. जन-भाषा और साहित्यिक भाषा का समन्वय,

व्यक्ति और समाज

व्यक्तिगत भावों और समाज के भावों एवं स्थितियों के समन्वय का 'विनय-पत्रिका' अन्यतम उदाहरण है। एक प्रकार से गोस्वामी तुलसीदास ने व्यक्तिगत भावों की विशद अभिव्यक्ति 'विनय-पत्रिका' में की है। कलि की कुचालों से प्रेरित होकर उन्होंने पहले समस्त देवताओं की प्रार्थना की है और उनसे वरदान रूप में उस राम-भक्ति और राम की शरण को माँगा है, जो उनकी और समाज की रक्षा में सक्षम है। इस प्रकार उनकी व्यक्तिगत व्यथावेदना वैयक्तिक न रहकर समस्त समाज की व्यथा-वेदना बन गई है। उनका व्यक्ति विस्तृत और विराट होकर समष्टि की भूमि पर उतर आया है। निम्न पद में व्यक्ति और समष्टि का विराट समन्वय द्रष्टव्य है :

> ''दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तयी है।
> देव, दुवार पुकारत आरत, सब की सब सुख-हानि भई है॥
> प्रभु के वचन वेद-बुध-सम्मत मम मूरति महिदेव मई है।
> तिनकी मति रिस-राग मोह-मद लोभ लालची लीलि लई है॥

राज समाज कुसाज कोटि खलु कलपति कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति-परिमित पति हेतुवाद हठि हेरि हई हैं॥
आश्रम बरन-धरम, बिरहित जग, लोक-बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पाप रत, अपने-अपने रंग रई है॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ि कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है॥
परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल सफल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि-गोमर बिवस विकल जामति न बई है॥

× × ×

भरे भाग अनुराग लोह कहैं, राम अवध चितवनि चितई है।
विनती सुनि सानन्द हेरि हँसि करुना-बारि भूमि भिजई है॥
राम-राज भयो काज सकल सुभ राजा राम जगत बिजई है।
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब, सुकृत सैंन हारत जितई है॥
सुजन सुभाव सराहत सादर, अनायास साँसति बितई है।
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि बिरुद सदई है॥
तुलसी प्रभु आरत आरति हर, अभय बाँह केहि-केहि न दई है।"

यहाँ जिस व्यथा और वेदना का चित्रण हुआ है, वह केवल तुलसी की न होकर समस्त समाज की है। कलियुग ने अपने अत्याचारों से सारे समाज को संतृप्त और अस्त-व्यस्त कर डाला है। समाज के प्रतिनिधि के रूप में गोस्वामी जी जो पुकार करते हैं, राम उसे सुन कर कृपालु हो जाते हैं और करुणा-वारि से भूमि को भिगो देते हैं। राम-राज्य हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप समाज की व्यथा दूर हो जाती है और पुण्य की सेना हारती हुई विजयिनी हो जाती है। व्यक्ति और समाज का ऐसा विराट समन्वय और व्यक्ति के साथ समाज-मंगल की भावना और कहाँ मिल सकती है। 'विनय-पत्रिका' में ऐसे अनेक पद मिलेंगे, जिनमें व्यक्ति और समाज का समन्वय हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास के 'स्वान्तः सुखाय' और 'बहुजन हिताय' में अन्तर नहीं है।

आदर्श और यथार्थ

गोस्वामी जी को कुछ आलोचक प्रतिक्रियावादी और आदर्शवादी कहकर उनकी आलोचना करते हैं, परन्तु उनके लिए ऐसा कहना यथार्थवादिता से दूर रह कर भ्रान्त-धारणा का आँचल पकड़ना है, गोस्वामी तुलसीदास ने अपने किसी काव्य में भी यथार्थता से विमुख होकर कल्पना के आकाश में आदर्श को नहीं देखा। उनका आदर्श यथार्थ की भूमि से ही पल्लवित हुआ है। इस प्रकार उनका समस्त काव्य आदर्श और यथार्थ का सन्तुलित समन्वय है। 'विनय-पत्रिका' के समन्वय में भी यही बात है। 'विनय-पत्रिका' में ऐसे अनेक पद हैं, जिनमें गोस्वामी जी ने समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। निम्न उदाहरण में यथार्थ का कितना उभरा हुआ रूप मिलता है :

राज-समाज कुसाजु कोटि खलु, कलपति कलुष कुचाल नई है।
प्रीति प्रतीति प्रीति परिमित पति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥
आश्रम-बरन-धरम-बिरहित जग, लोक बेद, मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पाप-रत, अपने-अपने रंग रई है॥

सांति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है।
परमारथ, स्वारथ, साधन भये अफल सफल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर, विवस विकल जामति न बई है।
कलि-करनी बरनिये कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल नई है॥''

कलिकाल को इस यथार्थ स्थिति का वर्णन करने के पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास जिस आदर्श राम-राज्य और राम-राज्य में सुख-शान्ति की कल्पना करते हैं, वह यथार्थ की ही भूमि पर है :

'भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राम अवध चितवनि चितई है।
बिनती सुनि सानंद हेरि हठि करुना-वारि भूमि भिजई है॥
राम-राज भयो काज सफल सुभ राजा राम जगत विजई है।
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब सुकृत सैन हारत जितई है॥
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास सांसति बितई है।''

आदर्श की यह स्थापना आकाश-कुसुम मात्र न होकर यथार्थ की भूमि पर ही है। अतः 'विनय-पत्रिका' में यथार्थ और आदर्श का समन्वय हुआ है।

काव्य और जीवन

''विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास ने काव्य को जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक धरातल पर भक्ति-समन्वित करके प्रस्तुत किया है : इससे उसमें अपने आप ही काव्य और जीवन का समन्वय हो गया है। प्रत्येक पद में जीवन की ऐसी यथार्थ चेतना समाई हुई है कि वह जीवन का कोई-न-कोई चित्र ही प्रस्तुत करता है : 'विनय-पत्रिका' में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है 'कला कला के लिए न होकर कला जीवन के लिये है।' निम्न पद में काव्य के अन्तर्गत विशुद्ध जीवन की अभिलाषा की जैसी उज्ज्वल अभिव्यक्ति हुई है, वैसी क्या अन्यत्र मिलेगी :—

कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत-सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरन्तर मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह जनित-चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भगति लहौंगो॥''

श्री रघुनाथ की कृपा से सन्त-स्वभाव पाने, लाभ-हानि में सन्तोष करने, मन, वचन और कर्म से पर-हित-संलग्न रहने, परुष वचनों को सुनकर भी क्रोध न करने, मान से रहित रहने और जीवन की इस पद्धति से अविचल हरि-भक्त पाने की अभिलाषा कितनी महान् है। जीवन की अभिव्यक्ति का ऐसा काव्य ही लोक-मंगलकारी विभूति होता है।

काव्य और संगीत

'विनय-पत्रिका' गेय काव्य है : प्रारम्भ के पद विभिन्न देवताओं की वन्दना के हैं और शेष में अपनी और समाज की दीन-हीन दशा और व्यथा की अभिव्यक्ति

कवि ने की है : अतः गेयता 'विनय-पत्रिका' का प्रकृतिगत अंग बन गई है। 'विनय-पत्रिका' जहाँ एक ओर गोस्वामी तुलसीदास के प्रगाढ़ और परिपक्व कवित्व का परिचय देती है, वहाँ संगीत की कसौटी पर भी खरी उतरती है। प्रत्येक पद में काव्य और संगीत का समन्वय हुआ है। पदों में कल्याण, केदार, गौरी, आसावरी, भैरवी आदि अनेक रागों का प्रयोग हुआ है। ध्वन्यात्मकता, गेयता, व्यक्तिगत भावनाओं का प्रकाशन, गहरी अनुभूति ने प्रत्येक पद को संगीत की मधुर लहरी में गेयता प्रदान की है : ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता के निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं---

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुनं।
नव कंज लोचन कंज मुख, कर कंज पद कंजारुनं ॥
कन्दर्प अगणित अमित छबि नव नील नीरद सुन्दरं।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि-सुचि नौमि जनक सुता वरं ॥"

× × ×

"जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥

× × ×

गाइए गनपति जग बन्दन। संकर सुवन भवानी नन्दन ॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन विनायक। कृपा-सिन्धु सुन्दर सब लायक ॥
मोदक प्रिय मुद मंगलदाता। विद्या-वारिधि बुद्धि विधाता ॥
माँगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं राम-सिय मानस मोरे ॥"

विभिन्न वादों, भक्ति और दर्शन का समन्वय

विभिन्न साधना-पद्धति और वादों का विराट-समन्वय 'विनय-पत्रिका में देखते ही बनता है। प्रारम्भ में गोस्वामी जी प्रत्येक देवता की स्तुति करते हुए उनसे राम-भक्ति मांग कर समस्त देवों का एक देव में समन्वय कर देते हैं। भक्ति के क्षेत्र में ऐसा विराट-समन्वय अन्यत्र कहीं न मिलेगा। यहां अनेक देवताओं की स्तुति जहाँ बहुदेववाद के प्रति उनकी आस्था व्यक्त करती हैं, वहाँ सबसे राम की भक्ति माँगने में एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा होती है। उन्होंने अपनी साधना मे सगुण और निर्गुण के विवाद का भी अन्त कर दिया। सगुण और निर्गुण का समन्वय निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

"अनघ अविच्छिन्न सर्वज्ञ सर्वेश, खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं।
प्रनतजन खेद-विच्छेद विद्या निपुन, नौमि श्रीराम सौमित्र साकं।"

निम्न पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास द्वैतवाद, अद्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद तीनों के प्रति उदासीनता प्रकट करते हुये तीनों को तीन भ्रम कह देते हैं—

"कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानैं।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपुन पहिचानै ॥

तुलसी की राम-भक्ति और राम-भजन ऐसा विशद राजमार्ग है, जिसमें जप, तप, तीरथ, उपवास, दान, यज्ञ, योग, सिद्धि, ज्ञान, संन्यास, भक्ति, दर्शन तथा समस्त साधनात्मक वादों का समन्वय हो गया है :

नाहिन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरो सो।
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो ॥

पायेहि पै जानिबो करम फल भरि-भरि वेद परो सो।
आगम-विधि, जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो ॥
सुख सपनेहुँ न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरो सो।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो ॥
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आप धरो सो।
बहु मत सुनि बहु पंथ, पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ॥
गुरू कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज-डगरो सो।
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै मरो सो।
राम नाम बोहित भव-सागर चाहे तरन तरो सो ॥"

साहित्यिक समन्वय

साहित्यिक समन्वय के अन्तर्गत 'विनय-पत्रिका' में प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों तथा जन-भाषा और साहित्यिक भाषा का समन्वय व्यापक रूप से हुआ है। 'विनय-पत्रिका' में प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का समन्वय हुआ है। 'विनय-पत्रिका' का आत्मानुभूति से युक्त जहाँ प्रत्येक पद स्वतन्त्र है और मुक्तक काव्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है, वहां आद्यान्त प्रबन्ध-योजना भी मिल जाती है। 'विनय-पत्रिका' समाज के प्रतिनिधि के रूप में गोस्वामी जी ने राम-दरबार में भेजी है। गणेश की वन्दना के रूप में मंगलाचरण है और इसके बाद ही देवताओं की वन्दना के रूप में विषय-प्रवेश होता है। इसके पश्चात् गोस्वामी जी अपनी व्यथा-वेदना, जो प्रकारान्तर से समाज की ही व्यथा-वेदना है, व्यक्त करते हैं अन्त में वे अपनी 'पत्रिका' को स्वीकृति करने के विशिष्ट प्रयास में राम के मुख्य पार्षद हनुमान, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि का निहोरा करके पत्रिका पर अनुकूल मत देने के लिए तैयार कर लेते हैं। वे माता सीता को भी सिफारिश करने के लिए अनुकूल बना लेते हैं। इस अनुकूल वातावरण में 'पत्रिका' राजा रामचन्द्र के समक्ष प्रस्तुत होती है और उस पर सही' कर देते हैं। तुलसीदास मुदित होकर मस्तक नवाते हैं। उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। 'विनय-पत्रिका' का प्रत्येक पद आत्मानुभूति ध्वन्यात्मकता भाषा-सौन्दर्य आदि की दृष्टि में सफल मुक्तक भी है। अतः इसमें प्रबन्ध और मुक्तक शैली का समन्वय करने की अद्भुत प्रतिभा सामने आई है।

साहित्यिक दृष्टि से साहित्यिक भाषा और जन-भाषा का भी समन्वय 'विनय-पत्रिका' में हुआ है। प्रारम्भ के विनय-सम्बन्धी पद कोमल-कान्त-मधुर संस्कृत में हैं, साथ ही आत्माभिव्यक्ति के पदों में सरल जन-भाषा का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर हुआ है :

"द्वार हौं भोर ही को आज।
रटट रिरिहा आरि और न, कौर ही तें काज।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' में समन्वय की विराट चेष्टा है। इसमें तुलसी की समन्वयात्मक प्रतिभा चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों, काव्य-संगीत, व्यक्ति-समाज, भक्ति-दर्शन और साधनात्मक वाद, आदर्श-यथार्थ, काव्य और जीवन आदि का संतुलित समन्वय 'विनय-पत्रिका' में देखते ही बनता है।

प्रश्न 44—भक्तिकालीन जन-जीवन की समस्याओं और विभिन्न दार्शनिक आचार्यों द्वारा उनके समाधान को दृष्टि में रखते हुये इस क्षेत्र में 'विनय-पत्रिका' का योगदान बतलाइये।

उत्तर—**भक्ति कालीन जीवन और समाज की समस्या**—तत्कालीन समाज को राजनैतिक पराधीनता और अत्याचारों ने झकझोर डाला था। साथ ही सामाजिक व्यवस्था और संस्कृत का रूप भी विकृत हो गया था। तथा इस स्थिति का यथार्थ चित्र 'विनय-पत्रिका' के निम्न पद में अंकित हुआ है :

' राज-समाज कुसाज कोटि खलु, कलपित कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति, हेतुवाद हठि हेरि हई है।
आश्रम, बरन, धरम-बिरहित जग, लोक-वेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पाप रत, अपने अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है।
कामधेनु धरनी कलि गोचर बिवस बिकल जामति न बई है।
कलि करनी बरनिये कहाँ लो, करत फिरत बिनु टहल टई है।"

उपर्युक्त पद में जिस कलियुग की करनी का वर्णन हुआ है, वह तत्कालीन समाज की शोचनीय अस्त-व्यस्त स्थिति थी। इस स्थिति से उद्धार पाना ही तत्कालीन युग द्रष्टा और युग स्रष्टताओं का मुख्य कार्य था। जीवन-व्यापी विषमताओं ने व्यक्ति और समाज के जीवन को नैराश्य से भर दिया था। समाज मुगल शासकों के अत्याचार चुप-चाप सहन करता था। प्रतिकार की उसमें शक्ति नहीं थी। महाराणा प्रताप जैसे कुछ वीरों ने इस दशा में प्रयास अवश्य किया, परन्तु विशाल अत्याचारी मुगल शक्ति का प्रबल प्रतिरोध करने में सफल न हो सके। राजनैतिक क्षेत्र में असमर्थता देखकर उस युग के प्रबुद्ध आचार्यों ने आसन्न समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान खोजने का बहुत कुछ सफल प्रयास किया। शंकराचार्य के पश्चात् रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य और निम्बार्क आगे आये, परन्तु इनके दर्शन में समाज की आसन्न समस्याओं का समाधान न मिल सका। इस समस्याओं का समाधान भक्ति में स्वामी रामानन्द ने राम-भक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने राम को सर्वशक्तिमान, सर्वोपरि और सर्व-नियन्ता घोषित किया। इसी समय आचार्य बल्लभाचार्य ने भय और ताप से पीड़ित जीवों को कृष्ण-भक्ति का आश्रय दिया। उन्होंने भगवाद्अनुग्रह से दुःखों के विनाश की घोषणा की। आचार्य चैतन्य ने बतलाया कि ईश्वर परम-तत्व अनन्तशक्ति से युक्त है।

गोस्वामी तुलसीदास विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से परिचित थे : वे "नाना-पुराण निगमागम-सम्मत" 'रामचरित-मानस' की रचना कर चुके थे। वे युग-द्रष्टा और युग-सृष्टा दोनों ही थे : अतः उन्होंने युग की समस्याओं का देखा-परखा और अपने काव्य के द्वारा उनका समाधान प्रस्तुत किया। गोस्वामी तुलसी ने 'ईश्वर' और 'नियति', एक ही सत्ता के दो नाम माने। उनके राम की इच्छा सर्वोपरि है। वे जो चाहते हैं, वही होता है :

"उमा दारु-योषित की नाई।
सबहि नचावत राम गुसाईं।"

यही कारण है कि तुलसीदास ने 'हरि-इच्छा बलवान है' की घोषणा की; तुलसी के राम जीव को कर्म की प्रेरणा देने वाले, उनके कर्म के फल का विचार करने वाले, भवितव्यता निर्धारित करने वाले और जीवन की समस्त गति विधियों का विधान करने वाले हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति और नियत का सुलझा हुआ रूप प्रस्तुत करते हुये जीव के सांसारिक दुःखों का सरल समाधान प्रस्तुत किया है : वे कहते हैं कि सभी कुछ हरि कृपा से होता है, अतः हरि-कृपा प्राप्त करने के लिये अच्छे कर्म करना चाहिये। जो कुछ होता है, वह ईश्वर की इच्छा से होता है, अत किसी कर्म के प्रतिकूल फल पर दुःख नहीं करना चाहिये। जीव को चाहिये कि वह स्वयं को पूर्ण रूप से भगवान की शरण में छोड़कर निश्चित हो जाय।

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास जीव को उसके चिरन्तन दुःखों का स्मरण कराते हुये कहते हैं।

"नाचत ही निसि-दिवस मर्‌यो।
तब ही तें न भयो हरि ! थिर जब ते जिव नाम धर्‌यो ।।
बहु वासना बिबिध कंचुकि, भूषण लोभादि भर्‌यो।
चर अरु अचर गगन जल-थल में कौन न स्वांग कर्‌यो ।।
देव, दनुज मुनि नाग मनुज नहि जाँचत कोउ उबर्‌यो।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू पै हर्‌यो ।।

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि से मनुष्य को अनन्त दुःख मिलने का कारण राम-भक्ति से विमुख होना है। राम-भक्ति को 'सर-सरिता' छोड़कर संसार के सुखों में सुख की आशा करना ओस-कन से प्यास बुझने की आशा करने के समान है :

'ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति सुरसरिता आस करत ओसकन की ।।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ शीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचन की ।।
ज्यों गंच काँच बिलोकि सेन जड़ छांह आपने तन की।
टूटत अति आतर अहार बस, छति बिसारि आनन की ।।
कहाँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौं गति जन की।'

इस दुःख से निवृत्ति प्रभु की शरण में उनकी कृपा से ही मिल सकती है। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं :

"तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन को।"

समस्त साँसारिक दुःखों से मुक्ति पाने की समस्या का एक मात्र समाधान गोस्वामी तुलसीदास रसना द्वारा राम-राम रटना और मन को 'राम नाम नव नेह मेह का चातक' बनाने के रूप में प्रस्तुत करते हैं :

"राम-राम रटु राम-राम रटु राम-राम जपु जीहा ;
राम-नाम नव नेह मेह को मन ! हठि होइ पपीहा।"

जीव को अच्छे कर्म करना चाहिये। बुरे कर्म करने मे ही वह दुःखों के जाल मे पड़ता है। विधाता के प्रतिकूल होने पर मनुष्य सुख के लिए इच्छा और उपाय करने पर भी दुःखों में ही पड़ता है। अपने बुरे कर्मों से मनुष्य को भयभीत रहना चाहिए :

"निज करनी विपरीत देखि मोहि समुझि महा भय लागै।
जद्यपि मगन मनोरथ विधि बस सुख इच्छित दुख पागै।"

राम का बल, नाम, शरण और कृपा ही संसार के दुःखों से मुक्ति दे सकती है :

"तुलसीदास इन्द्रिय-सम्भव दुख हरे बनहिं प्रभु तोरे।"

जीव को सदैव कर्म-जाल घेरे रहते हैं। वह ईश्वर की इच्छा से अपने कर्मों के अनुसार दुःख पाता है। ईश्वर जीवों से कर्मों का भोग करता है। उसकी रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती है। अतः जीव को भगवान की शरण में ही मुक्ति मिल सकती है :

'तू निज करमजाल महँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो।
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हो।।

तुलसी के राम मनुष्य के कर्मों के अनुसार ही उस पर कृपा करते हैं। अतः मनुष्य के दुखों का अन्त राम-भक्ति के द्वारा तब तक नहीं हो सकता, जब तक मनुष्य बुरे कर्मों को छोड़कर अच्छे कर्म नहीं करता। अतः वे जीव को अच्छे कर्म करने का उपदेश देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तत्कालीन जन-जीवन के समक्ष जो समस्यायें थी, उनका 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास ने व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया। वह समाधान है अच्छे कर्म करते हुए अपने को राम की शरण में डालकर राम-भक्ति पाना।

प्रश्न 45—सिद्ध कीजिए कि 'विनय-पत्रिका' का साधु मत लोक हित और लोक मंगल का साधक है।

उत्तर—सामाजिक प्राणी होने के कारण कवि का काव्य जहाँ समाज और लोक-मत से प्रभावित होता है वहाँ एक युग-द्रष्टा और युग-सृष्टा कवि अपने काव्य से लोक-मत का निर्माण कर समाज का उत्थान करने में भी समर्थ होता है। कवि को लोक-हित की भावना ही उसके काव्य का समाज से सम्बन्ध स्थापित करती है। जो काव्य लोक-हित को भुलाकर "कला-कला के लिये है" के सिद्धान्त पर लिखा जाता है, वह समाज का हित-साधन करने और सुरुचिपूर्ण लोक-मत बनाने में समर्थ नहीं होता। तुलसी की कला सुरुचिपूर्ण और लोक-सम्मत है : उनका 'स्वान्तः सुखाय' भी 'लोक-हिताय' है। 'रामचरित-मानस' में उन्होंने स्पष्ट कहा है :

"कीरति भनित भूति भलि सोई।
सरसरि सम सबकर हित होई।।

तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' में जो स्वान्तः सुखाय और साधु-मत है, वह लोक-हित का ही प्रतिपादक है। तुलसी निठल्ले साधु न होकर सात्विक वृत्ति वाले भगवद्भक्त साधु थे। उनके लिए समाज और लोक में मर्यादा की स्थिति महत्वपूर्ण थी। उन्होंने समाज में कर्त्तव्य से विमुख होकर कोरा साधु-सन्यासी होने का उपदेश कभी नहीं दिया। समाज से विमुख होने पर न तो संसार का घर बनता है और न परलोक का ही। तभी तो वे घर और बन के बीच में ही 'राम-प्रेम-पुर' छाने की घोषणा करते हैं :

"घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाइ।
तलसी घर घर-बन बीच ही, राम प्रेम-पुर-छाइ।।"

अतः 'विनय-पत्रिका' का साधुमत का आधार लोक-हित ही है। जो लोक-हित न कर सके, वह साधु-मत न होकर असाधु मत है। अच्छे आचरण और कर्म से हृदय को पवित्र बनाकर ही भगवान की भक्ति की जा सकती है। संसार के माया-

जाल में पड़ा हुआ जीव जब अपने कर्मों पर ग्लानि और पश्चाताप करता है और निश्छल हृदय से भगवान की शरण में जाता है, तभी उसको शान्ति मिलती है। जब सारा समाज इसी प्रकार की पवित्र एवं निश्छल भावनाओं से युक्त हो जाता है, तभी समाज में उदात्त भावों का प्रसार होता है और लोक-हित सम्भव बन जाता है। 'विनय-पत्रिका' में साधु-मत इसी प्रकार के लोक-हित का पोषक है।

गोस्वामी तुलसीदास का साधुमत, लोक-कल्याणकारी दार्शनिक तत्वों पर आधारित है। वे इस सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि जीव अविनाशी ब्रह्म का अंश है। संसार के विकारों और माया के आवरण के कारण ही ईश्वर और जीव में द्वैत भासित होता है, यदि जीव मन के विकारों से मुक्ति पा ले, तो द्वैत-भावना से उत्पन्न होने वाले सांसारिक दुःखों से भी उसे मुक्ति मिल जाय। इन विकारों ने ही शत्रु, मित्र और मध्यस्थ की स्थिति की सृष्टि की है। मन में ही स्वर्ग-नर्क आदि बसते हैं, रघुनाथ जी की भक्ति रूपी जल से धुलकर जब मन पवित्र हो जाता है, तब ज्ञान की प्राप्ति अनायास हो जाती है :

"जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि य मन कीन्हें बरिआई।
त्यागन, गहन, उपेच्छनीय अहि, हाटक, तृन की नाई॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध विधि सब मनि मह रह जैसे।
सरग-नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥
बिटप मध्य पुतरिका, सूत मह कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥
रघुपति-भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।
'तुलसीदास' वह चिद् विलास जग बूझत बूझत बूझै॥"

उपर्युक्त पद मे साधुमत लोक-हित से अलग न होकर लोक-हित का प्रतिपादक है। मनुष्य क लोक-जीवन के समस्त क्लेश 'मैं-तुम-तू' के द्वन्द्व के कारण ही है। इसी भेद के कारण समाज में संघर्ष होता है। अतः 'मैं' और 'तुम' का भेद दूर होने पर ही लोक-हित की संभावना हो सकती है।

गोस्वामी का साधुमत 'विनय पत्रिका' में स्पष्ट करता है कि माया के आवरण के कारण ही जीव अपने को ब्रह्म से अलग समझता है। संसार की मिथ्या प्रतीति ही माया है। यह जीव को अनेक प्रकार से नचाती है। इस माया की मृग-तृष्णा में डूबकर ही मनुष्य काल सर्प का ग्रास बन रहा है। इस माया के कारण ही जीव ब्रह्म से अलग होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है :

"जिव जब तें हरि तेंबिलगान्यो।
तब तें देह गेह निज जान्यो॥
माया बस स्वरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥"

गोस्वामी तुलसीदास शरीर तथा धन सम्पत्ति के अभियान को मिथ्या बताकर जीव का दम्भ समाप्त करते हैं :

"सहसबाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते॥"

मिथ्याभिमान का त्यागन लोक हित का प्रमुख तत्व है । इसी का सन्देश हमें 'विनय-पत्रिका' में मिलता है ।

'विनय-पत्रिका में जिस साधुमत को गोस्वामी तुलसीदास ने सामने रखा है, उसमें वे संसार के समस्त आकर्षणों को मिथ्या मानकर उनको छोड़ने को कहते हैं । वे कहते हैं कि रमणीय दीखने वाला संसार अति भयंकर है । यह उसी विवेकी को सुखकारी हो सकता है, जो सम सन्तोष को धारण करता है । संसार नभ वाटिका सा फूला हुआ नाशवान है । वह तो धुंआ का महल है । इसको देख कर जीव को इसमें भूलना नहीं चाहिये :

"अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी ।
सम संतोष दया विवेक तें व्यवहारी सुखकारी ।।"
"जग नभ वाटिका रही है फल फूलि रे ।
धुवां के सो धौरहर देखि तू न भूलि रे ।।"

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने जीव को जागरण का संदेश देते हुये कहा है :

"जागु जागु जीव जड़ ! जो है जग जामिनी ।
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी ।।
सोवत सपनेहुँ सहै संसृति संताप रे ।
बूड़्यो मृग बारि खायो जेवरी को साँप रे ।।"

उपर्युक्त उदाहरणों में गोस्वामी तुलसीदास ने जो साधुमत व्यक्त किया है, वह लोक हित का प्रसारक है । संसार के आकर्षणों और वैभव को मिथ्या समझ लेने से ही समाज में संघर्ष का वातावरण विनष्ट हो सकता है और सम स्थिति में मनुष्य सच्चा सुख पा सकता है । 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास स्पष्ट करते हैं कि सर्वशक्तिमान आनन्द-स्वरूप ब्रह्म से जीवन अभिन्न है । वह देह-जनित विकारों को छोड़कर ही आत्म-स्वरूप को पा सकता है :

"देह जनित विकार सब त्यागै ।
तब फिर निज स्वरूप अनुरागै ।।"

आत्म स्वरूप को प्राप्त करना ही ब्रह्म (राम) की प्राप्ति है :

अजहुँ विचार विकार तजि, भजु राम जन सुखदायकं ।
भव सिन्धु दुस्तर जग तरन, भजु चक्रधर सुरनायकं ।।
बिनु हेतु करुनाकर उदार, अपार माया तारनं ।
कैवल्य पति, जगत्पति, रमापति, प्रानपति गति कारनं ।।"

ईश्वर के प्रति आस्तिकता जो उपर्युक्त उदाहरण में व्यक्त हुई है, वह लोक हित की ही पोषक है । गोस्वामी तुलसीदास ने राम के आनन्द रूप का परिचय जीव को देकर परोक्ष रूप से लोक हित का प्रतिपादन किया है ।

राम भक्ति के लिये 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास ने सत्संग को अनिवार्य बतलाया है :

"बिनु सत्संग भगति नहिं होई ।
ते तब मिलै द्रवै जब सोई ।।'
सेवत साधु द्वैत भय भागै ।
श्री रघुवीर चरन लौ लागै ।।

अतः लोक हित के लिये साधु सत्संग अनिवार्य है। कुसंग से समाज में जन-हित का प्रसार कदापि नहीं हो सकता। कुसंग तो मनुष्य को पापाचार में लिप्त करता है। साधु सज्जनों के बढ़ने से समाज में लोक हित का विकास हो सकता है।

'विनय-पत्रिका' का प्रत्येक पद आत्म-दोष-दर्शन से भरा हुआ है। आत्म-दोष दर्शन की भावना साधुमत का अंग होने के साथ-साथ लोक-हित को भी व्यक्त करती है। अतः इस रूप में 'विनय-पत्रिका' का प्रत्येक पद लोक-हित-साधक बन गया है। निम्न पद में मनुष्य की जिस जीवन पद्धति का निरूपण किया गया है, वह साधु मत तो है ही, साथ ही उससे अधिक लोक-हित की साधक भी है :

"कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, सन्त सुभाउ गहौंगो।।
जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन, पर-गुन-नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रह, अविचल हरि भगति लहौंगो।।'

यदि सारा समाज साधुमत की इस अवस्था को प्राप्त हो जाय, तो इसमें अधिक लोक-हित और क्या हो सकता है। अतः 'विनय-पत्रिका' का साधुमत, लोक-गत है और लोक-हित-साधक है, इनमें दो मत नहीं हो सकते।

प्रश्न 46—'विनय-पत्रिका' में तुलसी की अभिव्यक्त विचारधारा पर एक सार गर्भित संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

उत्तर- गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'गीता-वली', 'कवितावली', आदि जितने प्रमुख ग्रन्थ हैं, उनमें 'विनय-पत्रिका' में ही उनकी विचारधारा का यथार्थ प्रतिनिधित्व मिलता है। 'विनय-पत्रिका' भक्ति के आदेश में लिखा गया भक्ति-काव्य मात्र नहीं है, उसमें गोस्वामी जी का परिपक्व चिन्तन पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है। 'विनय-पत्रिका' के द्वारा गोस्वामी तुलसी-दास ने ऐसे लोक-कल्याणकारी पथ का निर्देशन किया, जिस पर चलकर मनुष्य मन के विकार और संसार के मायाजाल से मुक्त होकर अपना और समाज का कल्याण कर सकता है।

'विनय-पत्रिका' में जो विचारधारा व्यक्त हुई है, उसका प्रमुख केन्द्र जीव और जगत का चिन्तन है। 'विनय-पत्रिका' के अनुसार जीव अनश्वर ब्रह्म का अंश है अतः अंश में अंशी के ही गुण होने चाहिये। परन्तु माया के भ्रम मे पड़ा हुआ होने के कारण वह नश्वर है और दुःखों को भोगता है। माया का विनाश होने पर ही जीव दुःखों से मुक्ति पा सकता है और माया का विनाश ज्ञान से ही सम्भव है। जीव ब्रह्म से अलग होकर माया में लिप्त हुआ और संसारी बनकर दुःख-जाल में पड़ा। वह अपने आनन्द स्वरूप को भुलाकर ही दुःखों के भोग में पड़ा :

"जिव जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह-गेह निज जान्यो।
मायावस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो।।"

× × ×

"आनन्द-सिन्धु मध्य तुव वासा। बिनु जाने मत मरत पियासा।"

'विनय-पत्रिका' में तुलसी स्पष्ट कहते हैं कि संसार नभ-वाटिका-सा फूला हुआ भ्रम-जाल की सृष्टि करता है। वह धुआँ का महल है अतः उसे देखकर उसमें भूल नहीं जाना चाहिये। यह रमणीय लगने वाला संसार ही भयंकर है :

"जग नभ-वाटिका रही है फल-फूलि रे।
धुआँ को सो धोरौहर, देखि तू न भूलि रे।।"

× × ×

"अनबिचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी।
सम संतोष-दया-विवेक तें व्यवहारी सुखकारी।।"

जीव ईश्वर से इतना ही भिन्न है कि ईश्वर जहाँ मायापति है, वहाँ जीव माया के अधीन है :

"हौं जड़ जीव ईस रघुराया।
तुम मायापति हौं बस माया।।"

इस माया से मुक्त होने पर जीव आनन्द स्वरूप अनश्वर ईश्वर ही है, परन्तु बिना हरि-कृपा के इस माया का नाश नहीं हो सकता। ज्ञान, भक्ति आदि अनेक साधन भी उसके सहायक नहीं हो सकते :

"ज्ञान भक्ति साधन अनेक, सब, सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसीदास हरि-कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं।।"

तुलसीदास का मत है कि जब तक मन विकारों को छोड़कर निर्विकार नहीं हो जाता, तब तक वह द्वैत-जन्य सांसारिक दुःखों को सहन करता है :

"जो निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति दुख संशय सोक अपारा।"

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्य-जीवन नश्वर है। यहाँ के सारे सम्बन्ध असत्य है। मनुष्य को सब कुछ यहीं छोड़ जाना पड़ता है। ये सब जब अन्त में छोड़ ही देते हैं, तो जीव को अभी से इन्हें छोड़ देना चाहिये। मन से सारी दुराशा निकालकर श्रीराम से अनुराग करना चाहिये :

"सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते।।
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते।
अन्तहु तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबहीं ते।
अब नाथहि अनुरागु, जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।।"

इस संसार सागर से पार होने के लिए मनुष्य के लिए और कोई अवलम्ब नहीं है :

"नाहिं न आवत आन भरोसो।
राम नाम बोहित भव सागर चाहें तरन तरो सो।।"

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास राम-नाम को कल्पतरु मानते हैं। वह दुःख दरिद्रता और दुकाल का हरण करने वाला है। नाम लेते ही सभी सीधे पड़ जाते हैं और विधाता भी वाम नहीं रहता। राम-नाम का प्रभाव जीव को समस्त सोच मुक्त कर देता है :

"कलि नाम कामतरु राम को।
दल निहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन-धाम को।
नाम लेत दाहिने होत सब बाम विधाता बाम को।"

मर्यादावादी तुलसी किसी भी देवता की अवहेलना नहीं करते। वे 'विनय-पत्रिका' के प्रारम्भ में समस्त प्रमुख देवताओं को श्रद्धा' के पुष्प चढ़ाते हैं, परन्तु उसने राम-भक्ति का वरदान मांगकर राम के प्रति अपनी अनन्यता और एकनिष्ठा व्यक्त करते हैं। वे शंकर को सबसे बड़ा दानी कहते हुए भी उनसे राम-भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं मांगते :

"दानी कहुं संकर सम नाहीं।
× × ×
"देहु काम-रिपु राम-चरन रति तुलसिदास कहुँ कृपा निधान।"
× × ×
"तुलसिदास जातक जस गावै।
विमल भगति रघुपति की पावै।"

अन्य देवताओं के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए राम के पति अनन्य भक्ति रखना 'विनय पत्रिका' की विचारधारा का प्रमुख अंग है।

जीव और ब्रह्म विषयक उपर्युक्त विचारधारा के साथ में गोस्वामी तुलसीदास ने संसार के पवित्र और निश्छल जीवन के विषय में भी अपनी विचारधारा व्यक्त की है। निम्न पद में जिस जीवन पद्धति का निरूपण गोस्वामी तुलसीदास ने किया है, वही सन्त समाज सुखी जीवन और लोक हित की स्थापना करने वाली है :

"कबहुक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते संत सुभाव गहौंगो।।
जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सौं कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन-क्रम वचन नेम निबहौंगो।।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।।
विगत मान, मम सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देह जनति चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भगति लहौंगो।।"

परोपकार का मानव जीवन में विशेष महत्व है। बिना परोपकार किये मानव जीवन व्यर्थ हो जाता है :

"काज कहा नर तनु धरि सार्यो।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय पत्रिका' में तुलसी के चिन्तन का चरमोत्कर्ष मिलता है। यह चिन्तन, जीवन के दार्शनिक और व्यावहारिक दोनों ही पक्षों में व्यक्त हुआ है। इसमें इस दिशा में स्पष्ट पथ प्रदर्शन मिलता है कि संसारी जीव किसी प्रकार सुखी रहकर अपना उद्धार कर सकता है। जीव राम-कृपा से विकारों से रहित होकर अपने आनन्द स्वरूप को प्राप्त कर जीवन को सुखी बनाने में सक्षम हो सकता है।

———

अध्याय 10

विनय-पत्रिका में प्रकृति-चित्रण

प्रश्न 47—प्रकृति चित्रण की दृष्टि से 'विनय पत्रिका' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—काव्य जीवन की अभिव्यक्ति है और जीवन प्रकृति से अभिन्न है। प्रकृति के वातावरण का मानव पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। वह कभी उसे हँसाती है, तो कभी रुलाती है और कभी उसके प्रति संवेदना प्रकट करती है। सुख के समय में प्रकृति आनन्द का संचार करती है, वह दुःख के समय हृदय को वेदना से भर देता है। संयोग में सुख देने वाली काली रात्रि "पिया बिन नागिन" बनकर डसने लगती हैं। सुरम्य प्रकृति-माधुरी मानव हृदय को आल्हाद से भरकर स्वयं कविता की सृष्टि करती है। प्रकृति के रमणीय अंचल ने ही पन्त जी को कविता की प्रेरणा दी। आदि काल से लेकर अब तक प्रकृति काव्य के अन्तर्गत अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। काव्य में प्रकृति चित्रण अनेक रूपों में हुआ है: कहीं प्रकृति अपनी नग्न माधुरी लेकर उपस्थित हुई है और कहीं वह उद्दीपन के रूप में सामने आई है। पन्त तथा अन्य छायावादी कवियों के काव्य में प्रकृति चित्रण उसकी नग्न माधुरी को प्रकाशित करते हुए आलम्बन रूप में हुआ है। रीति-कालीन काव्य उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण से भरा हुआ है। कहीं प्रकृति का प्रयोग अप्रस्तुत योजना के रूप में हुआ है और कहीं वह प्रतीकात्मक रूप में आई है। उसका चित्रण रहस्यात्मक रूप में भी हुआ है ; प्रकृति जहाँ वातावरण का चित्रण करती है, वहाँ मानवीय भावनाओं की संवेदनात्मक पृष्ठभूमि भी बनती है। वह 'महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि स्वतन्त्र हुई बिगरहि नारी।" के रूप में उपदेश भी देती है और पवनदूत', 'मेघदूत', के रूप में सन्देश की वाहिका भी बनती है।

'विनय-पत्रिका' भक्ति काव्य है। इसमें समाज के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने अपने दैन्य की अभिव्यक्ति की है। अतः 'विनय-पत्रिका' प्रकृति की विस्तृत रमणीय स्थली के लिए अवकाश होना संभव नहीं था। गंगा, यमुना, चित्रकूट आदि के जो वर्णन हुए हैं, वे भक्ति प्रेरक हैं। इन वर्णनों में प्रकृति वर्णन का स्वतन्त्र रूप नहीं देखा जा सकता।

गंगा-वर्णन

"हरति पाप त्रिबिधि ताप सुमिरत सुर सरित।
विलसित महि कल्प बेलि मुद मनोरथ फरित॥
सोहति ससि-धौल धार सुधा सलिल भरित।
विमलतर तरंग लसत रघुवर के से चरित॥
तो बिनु जगदम्ब गंग कलिजुग का करित।
घोर भव अपार सिन्धु तुलसी किमि तरित॥

यहाँ तीसरी पंक्ति में गंगा की उज्ज्वल धारा को अमृत के समान और चन्द्रमा के समान निर्मल कहने में उसका प्राकृतिक रूप सामने आता है, परन्तु सारा

वर्णन भक्ति का पोषक है। गंगा का नाम स्मरण करते ही सारे पाप और तीनों प्रकार के दुःख नष्ट हो जाते हैं। वह मनोकामना पूर्ण करने के लिए कल्प-बेलि है। उसकी लहरें रामचन्द्रजी के चरित्र के समान निर्मल है। गंगा ही कलियुग में उद्धार करने वाली है। यहाँ गङ्गा की प्राकृतिक सुषमा सामने न आकर उसका मुक्ति पद रूप ही सामने आता है।

यमुना वर्णन

"जमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों-त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बढ़ि काढ़न ॥
ज्यों-ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जमगन मुख मलीन है आसुन।
तुलसीदास जगदध जवास ज्यों अनघमेघ लागे गाढ़न ॥

यहाँ यमुना की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन न होकर उसके-पाप संताप-हारी रूप और भक्ति प्रदायिनी शक्ति सामने आती है। वर्षा ऋतु में जैसे-जैसे यमुना जल बढ़ता है, वैसे-वैसे सत्य, दया, अहिंसा आदि पुण्य रूप बड़े-बड़े योद्धा कलियुग रूपी राजा का निरादर करके उसको बाहर निकालने लगते हैं। बाढ़ के कारण यमुना का जल ज्यों-ज्यों गन्दा होता है, त्यों-त्यों यमदुतों के मुख मलिन होते जाते हैं।

चित्रकूट वर्णन

"सब सोच विमोचन चित्रकूट। कलिहरन, करन कल्यान बूट ॥
सुचि अवनि सुहावति आल बाल। कानन विचित्र, बारी बिसाल ॥
मन्दाकिनि मालिनि सदा सींच। बर-बारि विषम नर-नारि नीच ॥
साखा सुसृंग भूरुह सुपात। निरझर मधुकर मृदु मलय बात ॥
सुक, पिक, मधुकर मुनिवर बिहारु। साधन प्रसून, फल चारि चारु ॥
भव घोर-घाम-हर सुखद छाँह। थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह ॥
साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥
रस एक रहित-गुन-करम-काल। सिय-राम लपन पालक कृपाल ॥
तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम। सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥

यहाँ चित्रकूट की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन नहीं है। कवि ने उसका वर्णन राम भक्ति दायक और सोच विमोचक के रूप में किया है।

'विनय-पत्रिका' में परम्परागत प्रकृति चित्रण के रूप भी यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। परन्तु ये वर्णन भी राम-भक्ति प्रदायक के रूप ही हैं। कुछ उदाहरण लीजिए।

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण

"सुचि अवनि सुहावनि आल-बाल।
कानन विचित्र बारी बिसाल ॥
मन्दाकिनि मालिनि सदा सींच।
बर-बारि विषम नर नारि नीच ॥
सखा सुसृंग भूरुह सुपात।
निरझर मधुकर मृदु मलय बात ।
सुक, पिक मधुकर मुनिवर बिहारु।
साधन प्रसून, फल चारि चारु ॥"

निम्न पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास गङ्गा का स्वतन्त्र रूप में वर्णन करते

है परन्तु अन्तिम पंक्ति में रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए तट-विचरण करते रहने का वरदान माँगते हैं :

"विमल विपुल बहनि वारि, सीतल त्रय-ताप हारि,
भँवर वर विभंगतर तरंग-मालिका।
पुरजन पुजोपहार, साभित ससि धवल धार,
भंजन भव भार भक्ति कल्प-थालिका।।
निज तटवासी बिहंग जल-थल-चर पसु पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका।।
'तुलसी' तुव तीर-तीर सुमिरत रघुवंश वीर।
विचरत मति देहि मोहि-महिष-कालिका।'

अलंकृत रूप में प्रकृति-चित्रण

'विनय पत्रिका' के अनेक पदों में स्फुट रूप में प्रकृति-चित्रण हुआ है। निम्न उदाहरण में सांग रूपक अलंकार के द्वारा कवि उमाकांत को बसंत श्री से युक्त वन ही बना दिया है।

"देखो देखो वन बन्यो आज उमाकंत। मानों देखन तुमहिं आई रित बसंत।।
जनु तनुदुति चंपक कुसम-माल। वर बसन नील नूतन तमाल।।
कल कदलि-जघ, पद कमल लाल। सूचत कटि केसरी, गति मराल।।
भूषन प्रसून बहु विविध रंग। नूपुर किंकिन कलरव विहंग।।
कर नवल बकुल, पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकि लता जाल।।
आनन-सरोज, कच-मधुप गुंज। लोचन-बिसाल नव नील कंज।।
पिक बचन चरित वर बर्हि कीर। सिल सुमन हास लीला समीर।।

पद के अन्त में कवि विनय करता है कि वे उमाकांत कामदेव के भ्रमजाल में उन्हें छुड़ायें, जिससे सुख की राशि भगवान श्रीरामचन्द्र हृदय में निवास कर सकें। अतः यह प्रकृति-वर्णन भी भक्ति-परक है।

बहुत खोजने पर रहस्यात्मक, संवेदनात्मक, उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण की कुछ पंक्तियाँ मिल जायगी। निम्न पंक्तियों में प्रकृति का उपदेशात्मक रूप दृष्टव्य है :

"ज्यों कदली तरु मध्य निहारत,
कबहुं न निकसत सार।।"

× × ×

पावक काम, भोग घृत तें सठ कैसे परत बुझायो।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय पत्रिका' में प्रकृति वर्णन के जो चित्र यत्र-तत्र मिलते हैं, व परम्परागत प्रकृति-वर्णन के उदाहरण न होकर राम-भक्ति उद्दीपन के ही रूप में आये हैं। 'विनय पत्रिका' के प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उसमें प्रकृति वर्णन की सर्वथा उपेक्षा नहीं है। 'विनय पत्रिका' प्रबन्धात्मक महाकाव्य नहीं है, जिससे इसमें प्रकृति चित्रण की विशाल योजना रहती। कवि ने अपने इष्टदेव के समक्ष जो आत्माभिव्यक्ति की है, उसमें इष्टदेव राम से सम्बन्धित चित्रकूट आदि का प्रसंग राम भक्ति के उद्दीपक के रूप में आया है। दैन्यानुभूत की अभिव्यक्ति के लिए कुछ पदों में अप्रस्तुत रूप में भी प्रकृति के पदार्थों को उपस्थित किया गया है।

———

अध्याय 11

विनय-पत्रिका तुलसी की सर्वोत्कृष्ट कृति

प्रश्न 48—उन विशेषताओं का निरूपण कीजिए, जिनके कारण 'विनय-पत्रिका' को तुलसी की सर्वोत्कृष्ट कृति माना जाता है।

अथवा

प्रश्न 49—सिद्ध कीजिए कि 'विनय-पत्रिका' गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट कृति है।

उत्तर—'विनय पत्रिका' गोस्वामी तुलसीदास की अन्तिम रचना है। 'रामचरित मानस' महाकाव्य जैसे नाना पुराण निगमागम समस्त महाकाव्य के पश्चात् 'विनय पत्रिका' की रचना हुई। अतः काव्य-जगत् का समस्त प्रौढ़ अनुभव और जीवन-जगत् का प्रौढ़ दार्शनिक चिन्तन 'विनय-पत्रिका' में चरमोत्कर्ष में पहुँचा हुआ मिलता है। 'विनय-पत्रिका' निश्चय ही गोस्वामी तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है। संक्षेप में 'विनय-पत्रिका' की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं, जो उसे गोस्वामी तुलसीदास के समस्त ग्रन्थों में सर्वोत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और दर्शन का अथाह शान्त-सागर

भावपक्ष और विषयवस्तु की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' जीवन-जगत् का सार-तत्व है। इसमें जिस जीवन-पद्धति की कवि ने अभिलाषा की है, वही मनुष्य और समाज के लिए सच्चा सुख-शान्ति और आनन्द देने वाली है। उदात्त जीवन की ऐसी महान् भावना क्या अन्यत्र मिलेगी, जैसी कि निम्न पद में व्यक्त हुई है :

> "कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
> श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो॥
> जथा लाभ सन्तोष सदा, काहु सों कछु न चहौंगो॥
> परहित निरत निरन्तर मन क्रम, बचन नेम निबहौंगो॥
> परष बचन अति दुसह स्रवन मुनि तेहि-पावक न दहौंगो॥
> विगत मान सम-सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो॥
> परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो॥
> तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो॥

जीवन-मुक्त की यथार्थ स्थिति यही है। जिसे स्वर्ग कहा गया है, उसकी सृष्टि भी इसी जीवन-पद्धति से सम्भव है।

'विनय-पत्रिका' के शान्त-रस-सागर में ऐसी उत्ताल तरंगें उठती हैं, जो जन मानस की समस्त मलिनता का प्रक्षालन कर उसे निर्विकार जीव बना देती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास के समय में समाज में द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैता-द्वैतवाद

आदि का द्वन्द्व त्रस्त कर रहा था। तुलसीदास ने इन वादों को भ्रम कहकर इनकी उपेक्षा की :

"कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त वादों, साधना पत्रों का समन्वय 'राम भक्ति' और 'राम भजन' में कर दिया। यही जीव के लिए राम पथ है और भव सागर से पार करने वाला है :

"अगम विधि जप जाग करत नर, सरत न काज सरो सो।
सुख सपनेहुँ न जोग सिधि साधन, रोग वियोग धरो सो॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो।
विगत मान सन्यास लेत जल नावत आप धरो सो॥
बहु मत मुनि, बहु पन्थ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति, फिर-फिर पचि मरै मरो सो।
राम नाम बोहित भव सागर चाहे तरन तरो सो॥"

यहाँ काव्य दर्शन का जैसा समन्वय हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

'विनय-पत्रिका' में भक्ति का चरमोत्कर्ष है, अतः यह ग्रन्थ भक्तों के हृदय का कंठहार है। 'विनय-पत्रिका' का प्रत्येक पद भक्त हृदय की निश्छल झाँकी देता है। आत्म-समर्पण आत्म-दोष दर्शन आदि से कोई भी पक्ति रहित नहीं है। सर्वत्र भक्ति भावना का निर्मल रूप मिलता है।

"कबहुँ कृपा करि रघुवीर ! मोहुँ चितैहो।
भलो बुरो आपनो जन जानि दयानिधि अवगुन अमित बितैहो॥"

हृदय की निश्छल अभिव्यक्ति और भावों की गम्भीरता की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' अनुपमेय काव्य है। कवि के निर्मल हृदय की भाव धारा मंदाकिनी की तरह सर्वत्र प्रवाहित हुई है। कवि हृदय की निश्छलता और भावातिरेकता निम्न पद में द्रष्टव्य है :

"कबहुँ मन विश्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो।
जदपि विषय संग सह्यो दुसह दुख, विषम जाल अरुझान्यो॥
जनम अनेक लिए नाना विधि कर्म कीच चित सान्यो।
होइ न विमल विवेक नीर बिनु, वेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय, सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥"

युग-जीवन की अभिव्यक्ति और लोक मंगल की भावना की अभिव्यक्ति भी 'विनय-पत्रिका' को सर्वोत्कृष्टता प्रदान करती है। निम्न पंक्तियों में तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का यथार्थ चित्र अंकित हुआ :

"राज-समाज कुसाज कोटि खलु, कलपति कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥
आश्रम-बरन-धरम बिरहित जग, लोक-वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पाप-रत, अपने-अपने रंग रई है॥

सांति, सत्य, सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीय कपट कलई है ।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल विलसत हुलसति खलई है ।
परमारथ स्वारथ साधन भये अफल सफल नहिं, सिद्धि सई है ।।
कामधेनु धरनी कलि-गोमर, विवस विकल जामति न बई है ।।''

सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का यह यथार्थ चित्र है । प्रत्येक क्षेत्र में अव्यवस्था थी और जन-जीवन भी निराशा से भरा हुआ था । इस स्थिति में भी 'विनय-पत्रिका' राम-राज्य के रूप में लोक-मंगल का सन्देश देती है । भक्त की गुहार सुनकर राम ने कृपा-दृष्टि से देखा, राम राज्य हो गया, पुण्य की हारती हुई सेना विजयिनी हो गई, समाज के सारे कष्ट अनायास ही दूर हो गये । निम्न पंक्तियों में लोक-मंगल की यही भावना व्यक्त हुई है :

"भरे भाग अनुराग लोग कहै राम अवध चितवनि चितई है ।
बिनती सुनि सानन्द हेरि हँसि करुना वारि भूमि भिजई है ।।
राम राज भयो काज सुकृत सुभ, राजा राम जगत विजयी है ।
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब सुकृत-सेन हारत जितई है ।।
सुजान सुभाउ सराहत सादर अनायास साँसति बितई है ।
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि विरुद मदई है ।
'तुलसी' प्रभु आरत-आरति हर, अभय बाहं केहि-केहि न दई है ।।"

धार्मिक मत-मतान्तरों का समन्वय— विनय-पत्रिका' को प्रत्येक देवता के आराधक का कंठहार बना देता है । गोस्वामी तुलसीदास 'विनय-पत्रिका' के प्रारम्भ में विस्तार से गणेश, सूर्य, शिव, भैरव, देवी, गंगा-यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, सीता, राम आदि की वन्दना करते हैं । इस रूप में शैव शक्ति, वैष्णव आदि के प्रत्येक के लिये 'विनय-पत्रिका' अपनी ही रुचि का ग्रन्थ लगने लगती है । विभिन्न देवताओं की स्तुति के रूप में गोस्वामी जी जहाँ बहुदेवोपासकों के मन की बात कहते हैं । वहाँ सबसे राम-भक्ति माँगकर एकेश्वरवाद का भी प्रतिष्ठा करते हैं । भक्त, ज्ञानी, विरक्त आदि सभी को 'विनय-पत्रिका' मे अपनी रुचि की सामग्री मिल जाती है ।

प्रौढ़ कवित्व

विषयवस्तु और भक्ति-निरूपण की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' जहाँ भक्तों का कंठहार है, वहाँ काव्य-प्रौढ़ता की दृष्टि से उच्चकोटि के साहित्यिकों के लिए भी कम आकर्षक नहीं है । 'विनय-पत्रिका' में काव्य और संगीत की अवाध-धारा प्रवाहित हुई है । प्रायः सभी राग-रागनियों के उदाहरण स्वरूप पद 'विनय-पत्रिका' में हैं । विनय-पत्रिका में शायद ही ऐसा कोई पद हो, जो किसी न किसी राग में न गाया जा सके और साथ ही जिसे काव्य कला की उत्कृष्ट कसौटी पर न कसा जा सके । उदाहरण स्वरूप एक ही पद पर्याप्त होगा :

"जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे ।
कौने देव बराइ बिरद हित हठि हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध, पषान बिटप जड़ जवन कबन सुर तारे ।
देव, दनुज, मुनि, नाम, मनुज, सब दाया-विवस विचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ।

भाषा की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' प्रौढ़तम कृति है। एक ओर संस्कृत की पदावली से युक्त मधुर और पांडित्यपूर्ण भाषा का रूप मिलता है, तो दूसरी ओर सरल से सरल किन्तु परिष्कृत भाषा भी विनय पत्रिका में मिलती है। निम्न उदाहरण देखिये, इससे सरल और प्रांजल भाषा कहाँ मिल सकती है :

"लाभ कहा मानुष तनु पाये।
काय, बचन मन सपनेहुँ कबहुँक, घटत न काज पराये।
जो सुख सुरपुर नरक गेह वन, आवत बिनहि बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहि समुझाये।।
पर दारा, पर द्रोह मोहबस, दिये मूढ बन भाये।
गरभवास दुख रासि जातना, तीव्र विपति बिसराये।।
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये।।

इतनी सरल भाषा ने जीवन दर्शन का विवेचन अन्यत्र न मिलेगा। अद्‌भुत वाक्‌चातुर्य और उक्ति वैचित्र्य विनय पत्रिका के पदों में सर्वत्र मिलता है। स्फुट पदों में होते हुये भी 'विनय-पत्रिका' का गठन कलात्मक है। पत्रिका लिखने, भेजने और उसे स्वीकृत कराने की मनोवैज्ञानिक पद्धति को गोस्वामी तुलसीदास ने अपनाया है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' विषय-वस्तु-विवेचन, भाव सौन्दर्य एवं कला विधान आदि प्रत्येक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रचना है। गृहस्थ, विरक्त, भक्त, ज्ञानी, संगीतज्ञ, साहित्यिक जन तथा सामान्य जन आदि सभी के लिए 'विनय-पत्रिका' अपनी प्रिय वस्तु है और सभी के कंठ का हार है। गोस्वामीजी अन्य कृतियों की अपेक्षा 'विनय-पत्रिका' अपनी ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उसे सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ सिद्ध करती हैं।

अध्याय 12

अलंकार-योजना

प्रश्न 50—अलंकार योजना की दृष्टि से 'विनय पत्रिका' की विशेषताएँ बतलाइये।

उत्तर— जहाँ भावुक कवियों के काव्य में अलंकारों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति को निखारकर उसे स्पष्टता प्रदान करता है, यहाँ केशव जैसे कवियों केकाव्य में अलंकार भावाभिव्यक्ति के ऊपर भार बन जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास भावानुभूति के कवि हैं। 'विनय-पत्रिका के पदों में आत्म ग्लानि, दीनता और अपने दोष दर्शन के रूप में तो उनकी भावानुभूति का सागर ही उमड़ पड़ा है। अतः उन्हें कहीं भी सप्रयास अलंकारों को लाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सर्वत्र अलंकार भावाभिव्यक्ति में सहायक बनकर ही आये हैं। 'विनय-पत्रिका' में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही प्रकार के अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है।

शब्दालंकार

'विनय-पत्रिका' छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास आदि शब्दालंकारों से भरी पड़ी है। यमक, श्लेष जैसे चमत्कार प्रदर्शन करने वाले अलंकारों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। उदाहरण :

1. सेइय सहित सनेह देह भरि,
   कामधेनु कलि कासी।
   समनि लोक-सन्ताप पाप रुज,
   सकल सुमंगल रासी।

2. भजु दीन बधु दिनेश दानव दैत्य बंस निकंदनं।
   रघुनन्द आनन्द कंद, कोसल चन्द दशरथ नन्दनं।

3. दीन बन्धु दीनता दारिद दहि, दोष दुख,
   दारुन दुसह दर दरप हरन॥

पुनरुक्तिप्रकाश

1. राम राम रटु राम राम रटु राम राम जपु जीहा।
2. राम जपु, राम राम जपु राम जपु बावरे।

लाटानुप्रास

"मोह जनित मन लाग विविध विधि कोटिहुँ जतन न जाई।
जनम-जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक लपटाई॥
नयन मलिन पर नारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन वासना मान मद, जीव सहज सुख त्यागे॥

श्लेष

तुलसीदल रुँध्यो चहैं, सब सठ सिहोरे ।।
[तुलसीदल—(1) तुलसी का पौधा (2) तुलसीदल]

वक्रोक्ति

1. राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ।
   राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ।
2. नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों ।
3- कौन धौ सोमयागी अजामिल अधम,
   कौन जगराज धौं बाजपेयी ?

अर्थालंकार

विनय-पत्रिका में अर्थालंकारों के अन्तर्गत **साधर्म्यमूलक** तथा **विरोधमूलक** अलंकारों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। **उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान,** उल्लेख, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग यत्र-तत्र सर्वत्र भावाभिव्यक्ति में सहायक के रूप में हुआ है।

उपमा—साधर्म्यमूलक अलंकारों में उपमा अलंकार प्रमुख है। इसमें समान, गुणधर्म के कारण एक वस्तु की समानता दूसरी से की जाती है। तिजरा को सो टोक का एक मुहावरा है। एक दिन बीच में छोड़कर आने वाले ज्वर को तिजारी कहते हैं। इसको उतारने के लिए टोटका किया जाता था। टोटका करने वाले व्यक्ति को बिना पीछे मुड़कर देखे सीधा चला चला आना चाहिए अन्यथा टोटका करने वाली को तिजारी आने लगती है। स्वार्थ के साथी भी मनुष्य को तिजारी के टोटका के समान छोड़ देते हैं। इस समान धर्म को तुलसीदास ने निम्न पंक्तियों में उपमा के द्वारा बड़ी सहजता से व्यक्त कर दिया :

"स्वारथ के साथिन तज्यों,
तिजरा को सो टोटक, औचट उलटि न हेरो ।।

इसी प्रकार वे राम के प्रिय लगने की समता मीन को नीर प्रिय लगने से करते हैं :

"राम कबहुं प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को ।।"

निम्न पंक्ति में गोस्वामी तुलसीदास संसार की समता धुँआ के धौराहार से देते हैं। जिस प्रकार धुआँ का महान असत्य होता है, उसी प्रकार संसार भी असत्य है :

'धुआँ कैसो धौराहार देखि तू न भूलि रे ।'

अन्य उदाहरण :

1. पसु लौं पसु पाल ईस बाँधत छोरत रहत ।
2. भूल्यो सूल करम कोलुन्ह ज्यों बहु-बारिन पेरो ।।

रूपक—उपमा के समान ही रूपक का सफल प्रयोग 'विनय-पत्रिका' में हुआ है। इसमें उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है—

उदाहरण :

1. 'परिहरि राम भगति सुरसरिता ।'

2. "लोभ ग्राह, दनुजेस क्रोध, कुरुराज बन्धु खल मार।"
3. 'स्याम रूप सुचि रुधिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।'

सांगरूपक के 'विनय-पत्रिका' में कई पद मिलते हैं। निम्न पद में अर्द्ध नारीश्वर शिव पर बसन्त बन का सावयव आरोप है :

"देखो, देखो, बन बन्यौ आज उमाकान्त।
मानो देखन तुमहिं आई ऋतु बसन्त॥
बर बसन नील नूतन तमाल।
जनु तनु दुति चंपक कुसुम माल॥
कल कदलि जंघ पद कमल लाल।
सूचत कटि केसरी गति, मराल॥
भूषन प्रसून बहु विविध रंग।
नूपुर किंकिन कलरव बिहंग॥
कर नवक नकुल पल्लव रसाल।
श्रीफल कुच कंचुकि लता जाल॥
आनन सरोज, कच मधुप गुंज।
लोचन विसाल नव नील कंज॥
पिक बचन चरित वर बरहि कीर।
सित सुमन रास लीला समीर।

पद संख्या 23 में 'चित्रकूट' का वर्णन भी सांगरूपक में हुआ है।

उत्प्रेक्षा- –उत्प्रेक्षा में उपमेय पर उपमान की सम्भावना की जाती है। ऊपर सांगरूपक अलंकार में उदाहरण के रूप में जो पद दिया गया है, उसकी प्रथम दो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा है।

अन्य उदाहरण

1 पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुता वरं।
2. मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिग सुनहु करुनामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो।
सीतल, मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहन दूरि जनि खोयो॥

वीप्सा

पाहि पाहि राम ! पाहि रामभद्र, रामचन्द्र।

सन्देह

"सो बल गयो किधौं भये अब गर्ब गहीले।"

सहोक्ति

1. मात-पिता गुरु गनपति सारद।
शिवा समेत, संभु सुक नारद।
2. मन समेत या तन के बासिन्ह इहै सिखावर देहौं।

अनन्वय

पतित-पावन राम-नाम सो न दूसरो।

व्याजस्तुति—व्याजस्तुति में अभिधार्थ में निन्दा-सी लगती है, किन्तु व्यंग्यार्थ में प्रशंसा होती है। व्याजस्तुति का निम्न पद के समान अन्यत्र उदाहरण न मिलेगा :

"बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन, देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी ।।
निज घर की बरबात बिलोकहु हो तुम परम सयानी।
शिव की दई सम्पदा देखत; श्री सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरो सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हों आयो नकबानी ।।
दुखी दीनता दुखियन के दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी।
प्रेम प्रसंसा विनय-व्यंगजुत सुनि विधि की बरबानी।
'तुलसी' मुदित महेस मनहिंमन जगत् मातु मुसुकानी।"

पर्यायोक्ति

1. "नहिंन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हों अति हारो।
   यह बड़ि बात दास तुलसी, प्रभु नामहुँ पाप न जारो।
2, नाथ गरीब निबाज हैं, मैं गहीं न गरीबी।"

अर्थान्तरन्यास

"जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
. सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी।।"

लोकोक्ति

1. सेइ साधु गुरु मुनि पुरान स्रुति बूझयो राग बाजी ताँति।
2. काल पाय फिरत दसा, दय लु सबही की।
3. हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार, बार-बार परी न छार मुँह बायो।

विरोधाभास

1. उथपे थपन, थपे उथपन पन।
2. अँधियारी मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे।
3. सुरतरु तरे तोहि वारिद सताइ है।
4. सनमुख तोहि होत नाथ, कुतरु सुफल फलत।
5. सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।

काव्यलिंग

"जाको बाल विनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।"

रूपकातिशयोक्ति

"तेरे देखत सिंह से सिसु मेढक लीले।"

विभावना

1· सेवा बिनु गु॰ ॰हीन दीनता सुनाये।
2. केसव, कहि न ॰ ॰ का कहिये।
   देखत तुव रच ॰ ॰त्र अति समुझि मनहि मन रहिये।
   सून्य भीति पर चि॰, रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितरे।

यथासंख्य

1. बेनु करील, श्रीखण्ड बसन्तहि दूषन मृषा लगावै।
   सार रहित, हत, भाग्य, सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै।

2. सत्रु' मित्र, मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआई ।
त्याग, गहन, उपेच्छनीय, अहि, हाटक, तृन की नाईं ।

उदाहरण

1. "ज्यों जुबती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ।"
2. तरु कोतर महँ बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय विचार-हीन मन सुद्ध होई नहिं तैसे ।।

दृष्टान्त

1. घृत-पूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिम्ब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाय कल्प सत औटत नास न पावै ।।
2 वाक्य-ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई ।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ।।

प्रतीप

1 ललित भ्रकुटी सुन्दर चितवनि कच निरखि मधुप अवली लाजे ।

निदर्शना

1. राम-नाम छाँड़ि भरोसो करै और रे ।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ।।
2 जोग जाग जप विराग तप सुतीर्थ अटत ।
बाँधिवे को भव-गयन्द रेनु की रज्जु बटत ।।

विशेषोक्ति

1. राम-नाम महामनि फनि जग-जाल रे ।
मनि लिये फनि जियै व्याकुल बिहाल रे ।
2. तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।
3. धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय इहि तनु हेरे ।

सम्बन्धातिशयोक्ति

"मेरे अध सारद अनेक युग गनत पार नहिं पावै ।"

परिकरांकुर

1. परम कठिन भव-व्याल ग्रसित हौं त्रसित भयो अति भारा ।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपति नाथ बिसारी ।
2 तुलसीदास भव व्याल ग्रसित तब सरन उरग रिपुगामी ।

भ्रान्तिमान

"धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की ।।
ज्यों गच काँच विलोकि सेन जढ़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस छति विसारि आनन की ।।"

विषम

दखत चारु, मदूर बैन सुभ बोल सुधा इव सानी ।
सविष, उरग आहार निठुर जस, यह करनी वह बानी ।।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' में अलंकार भाव-प्रकाशन में सहायक बनकर आये हैं। अलंकारों के प्रयोग से अर्थ-सौन्दर्य में वृद्धि में हुई हैं। शब्दालंकारों ने भाषा को अनन्यात्मकता और लालित्य प्रदान किया है।

'विनय-पत्रिका' तुलसी के पांडित्य-पूर्ण प्रतिभा से पूर्ण भक्ति की अन्यतम कृति है। प्रारम्भ के पदों में देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इन समस्त पदों में कोमल-कान्त-संस्कृत की मधुर पदावली का ध्वन्यात्मक-सौन्दर्य देखते ही बनता है। इन पदों की प्रत्येक पंक्ति में सामाजिकता, ध्वन्यात्मकता, स्वर और पद मैत्री एवं ध्वन्यात्मकता मिलती है। अनुप्रास योजना का ऐसा सफल रूप अन्यत्र न मिलेगा। वैसे तो समस्त 'विनय-पत्रिका' में अनुप्रास की मनोरम सुषमा मिलती है। विनय, आत्माभिव्यक्ति और दैन्य प्रदर्शन के समस्त पदों में साधर्म्य मूलक उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति में सहायक के रूप में हुआ है। विरोधाभास, व्याजस्तुति, विषम आदि विरोधमूलक अलंकारों के द्वारा उक्ति वैचित्र्य और अर्थ गाम्भीर्य की सृष्टि हुई।

अध्याय 13

विनय-पत्रिका का रचना-काल

प्रश्न 51—'विनय-पत्रिका' के रचना काल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों को दृष्टि में रखते हुए आप अपना निर्णायक मत दीजिए।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' भक्ति का सार और जीवन-दर्शन के निचोड़ के रूप में परिपक्व रचना है। इसके गम्भीर विषय और विश्लेषण-पद्धति के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि यह तुलसीदास की वृद्धावस्था की रचना है। कवि ने कृति के अन्दर ऐसा कोई संकेत नहीं दिया, जिससे इसकी रचना-तिथि सहजता से ज्ञात हो सके। यही कारण है कि इसके रचना-काल के सम्बन्ध में विद्वानों को तर्क और अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है।

'विनय-पत्रिका' के रचना-काल पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त ने निम्न पद प्रस्तुत किया है :

"भजि मन राम चरन दिन राती।
रसना कम न भजै तू हरि कों क्यो बैठी इठलाती।
जिनके कहत दहत दुख दारुन सुनि भय ताप नसाती।
लिखा सो सुजस सिया रघुवर को सुनि जुड़ाय हिय-छाती।
संवत सोरह सै इकतीसा जेठ मास छवि स्वाती।
'तुलसीदास' इक अरज करत है प्रथम विनय की पाती॥"

इस पद के अनुसार 'विनय-पत्रिका' की रचना तिथि सम्वत् 1631 ठहरती है, जबकि 'रामचरितमानस' को सम्वत् 1631 में प्रारम्भ करने की स्पष्ट घोषणा गोस्वामी तुलसीदास ने की है :

"सम्बत् सोरह सै इकतीसा।
करौ क्या हरिपद धरि सीसा।"

अतः उक्त पद की तिथि को 'विनय-पत्रिका' की रचना तिथि मानना असंगत है, फिर पद की भाषा और गठन के आधार पर भी इसे 'विनय-पत्रिका' का पद नहीं माना जा सकता। अतः इस पद के अप्रमाणिक होने से इसके आधार पर 'विनय-पत्रिका' की रचना तिथि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

अन्त साक्ष्य का आधार

तुम तज हौं कासों कहौं और को हित मेरे ?
दीनबन्धु सेवक, सखा आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे।
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु बेरे।
कृपा कोप मतिभायहूँ धोखेहुँ तिरछेहूँ रांम निहारेहि हेरे।
जो चितवनि सौंधी लगै चितइये सबेरे।
'तुलसीदास' अपनाइये कीजै न ढील, अब जीवन अवधि अति नेरे।

—पद संख्या 273

कृपा गरीब निवाज की देखत गरीब की साहब बाह गही है ।
बिहँस राम कह्यो 'सत्य है सुधि मैं हूँ लही है ।
मुदित नाथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है ।
पद संख्या 279

उपर्युक्त पदों से निम्न बातें सिद्ध होती हैं—

1. 'विनय-पत्रिका' तुलसीदास के जीवन काल से ही समाप्त हुई थी ।
2. 'परी रघुनाथ हाथ सही है' से सिद्ध है कि पत्रिका के रूप में लिखी हुई 'विनय-पत्रिका' रघुनाथ जो ने सही की थी ।
3. 'विनय-पत्रिका' वृद्धावस्था के अन्तिम चरण में पूर्ण हुई ।

इसी सन्दर्भ में आचार्य चन्द्रावली पाण्डेय 'विनय-पत्रिका' की रचना तिथि के सम्बन्ध में अपना मत निम्न प्रकार व्यक्त करते हैं :

'जीवन अवधि अति नेरे' से वृद्धावस्था का बोध होता है, तो भी यहाँ कठिनाई यह है कि जीवन की अवधि का कोई ठिकाना नहीं । वह साठ वर्ष के उपरान्त तो प्रतिदिन आती दिखाई देती है । 'विनय-पत्रिका' की जो प्रति संवत् 1666 की मिली है, उसका नाम 'राम गीतावली' है ।.........सारांश यह है कि 'विनय-पत्रिका' की रचना उक्त सम्वत् 1666 के अनन्तर ही हुई और इसके कुछ पद फलत: बने भी उसके उपरान्त ही । समय की स्थिति को एक ही पद में तुलसी ने बाँधकर रख दिया है :

दीनदयालु, दरित दारित दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है ।
देव दुवार पुकारत आरत सब की सब सुख हानि भई है ।
राज समाज कुसाज कोटि कलपित कलुष कुचाल नई है ।
नीति प्रतीत प्रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेर हई है ।
आश्रम बरन धरम विरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है ।
प्रजा पतित पाखण्ड परत रत, अपने-अपने रंग रई है ।"

"इससे पाया जाता है कि इस पद की रचना किसी अकाल के दूर होने पर ही हुई है । ऐसा अकाल संवत् 1655 में पड़ा था । यदि यह ठीक है, तो इसके आधार पर कहा जा सकता है कि विनय पत्रिका के कुछ पद 1660 वि० के बाद भी बनते रहे और जब सब बन गये, तब राम-गीतावली को विनय-पत्रिका का रूप मिल गया ।

डा० चन्द्रावली का मत अनुमान पर ही आधारित है । डा० माताप्रसाद गुप्त का भी यही अनुमान है कि 'विनय-पत्रिका' 'राम-गीतावली' का ही परिवर्तित रूप है और इसका रचना-काल सं० 1666 के पश्चात् ही होना सम्भव है ।

पं० रामनरेश त्रिपाठी

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने विनय पत्रिका' के रचना-काल के सम्बन्ध में अपना मत देते हुए कहा है :

"गोस्वामी जी सं० 1644 के लगभग ब्रज गए होंगे और वहाँ से लौटते ही विनय-पत्रिका के पद रचने प्रारम्भ कर दिए होंगे और इस प्रकार 1668 तक रचते रहे होंगे ।"

त्रिपाठी जी के इस मत पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है :

"त्रिपाठी जी ने कदाचित केवल 'विनय-पत्रिका' के पाठ को लेकर विचार किया है। 'पदावली रामायण' के पाठ पर यदि उन्होंने ध्यान दिया होता तो इस प्रकार की कल्पनाएँ वे न करते।"

अतः त्रिपाठी जी का मत भी डा० माताप्रसादगुप्त और चन्द्रावली पाण्डेय के मत की तरह काल्पनिक ही है।

डा० श्यामसुन्दर दास का मत

डा० श्यामसुन्दर दास ने 'विनय-पत्रिका' की रचना-तिथि पर विचार करते हुये लिखा है :

"इसमें केवल 176 पद हैं, जबकि और प्रतियों में 280 पद तक मिलते हैं। यह कहना कठिन होगा कि यह शेष 104 पदों में से कितने वास्तव में तुलसी-दास जी ने बनाये हैं और कितने अन्य लोगों ने अपनी ओर से जोड़ दिये हैं। जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि इन 104 पदों में से जितने पद तुलसीदास जी के स्वयं के बनाये हुये हैं, वे संवत् 1666 और संवत् 1680 के बीच में बने होंगे।"

डा० दास ने यह मत 'विनय-पत्रिका' की एक प्राचीन प्रति के आधार पर व्यक्त किया है। इसमें रचना-तिथि संवत् 1666 दी हुई है।

डा० रामकुमार वर्मा ने डा० श्यामसुन्दर दास के मत का समर्थन करते हुये कहा है—"यदि यह प्रति प्रामाणिक हैं तो सं० 1666 ही 'विनय-पत्रिकाा का रचना-काल निश्चित होता है।

परन्तु जिस प्रति को दृष्टि में रखकर उपर्युक्त मत व्यक्त किये गये हैं, उस प्रति की प्रामाणिकता सन्देहास्पद है। अतः उसके आधार पर निश्चित की हुई तिथि को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

बाबा वेणी माधवदास का मत

बाबा वेणी माधवदास ने लिखा है—

"विदित राम विनयावली, मुनि तब निर्मित कीन्ह।
मुनि तेहि साखी युत प्रभु, मुनिहि अभय कर दीन्ह॥"
मिथिलापुर हेतु पयान किए।
सुकृती जन को सुख सांति दिए॥

उपर्युक्त पंक्तियों में 'मुनि तब निर्मित कीन्ह' के प्रासंगिक अर्थ का आधार लेकर डा० श्यामसुन्दर दास 'विनय-पत्रिका' का रचना-काल संवत् 1666 और संवत् 1669 के बीच मानते हैं।

उपर्युक्त मतों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट है कि इनके आधार पर 'विनय-पत्रिका' के रचना-काल की कोई निश्चित तिथि का निर्णय नहीं किया जा सकता। गोस्वामी तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' में अपनी जर्जर वृद्धावस्था का वर्णन किया है और उनकी मृत्यु-तिथि सम्वत् 1680 निश्चित है। अतः 'विनय-पत्रिका' में जर्जर वृद्धावस्था के निम्न वर्णनों के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है :

"देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई।
सो प्रगट तनु जरजर जरावस, व्याधि सूल सताबई।
सिर कंप इन्द्रिय-शक्ति प्रतिहत वचन काहु न भाबई।"

—पद संख्या 136

'खेलत खात लरिकगन गो चलि, जीवन जुवतिन लियो जीत।
रोग-वियोग-सीक स्रम-संकुल बड़ि वय व्रथहि व्यतीत।"

—पद संख्या 234

गोस्वामी तुलसीदास ने 'कवितावली' और 'हनुमान बाहुक' में आसन्न वृद्धावस्था में बाहु-पीड़ा का वर्णन किया है। यह पीड़ा उनके समस्त शरीर में व्याप्त हो गई थी :

पाँव पीर, पेट पोर, मुँह पीर,
जरजर सकल शरीर पीरमई है।

इस आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि 'विनय-पत्रिका' की रचना संवत् 1666 और 1680 के मध्य में हुई और उसकी समाप्ति संवत् 1680 से कुछ पूर्व ही हुई।

अध्याय 14

सूर और तुलसी की भक्ति भावना

प्रश्न 52—तुलसी की 'विनय-पत्रिका' और सूर के 'भ्रमरगीत' को दृष्टि में रखते हुये दोनों की भक्ति भावना की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न 53—'तुलसी में शिवत्व है, सूर में सौन्दर्य 'विनय-पत्रिका' तथा 'भ्रमरगीत' के आधार पर इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

उत्तर—भक्ति-काल ही नहीं अपितु हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि सूर और तुलसी दोनों ही भक्ति कवि हैं। दोनों ने भगवान के निर्गुण रूप में विश्वास करते हुए भी भक्ति के आलम्बन के रूप में सगुण को सुगम मानकर निर्गुण निराकार के स्थान पर सगुण साकार की भक्ति का प्रतिपादन किया है। अनादि, अनन्त और निर्गुण निराकार ब्रह्म ही दोनों भक्त-कवियों की दृष्टि में भक्तों के लिए लीला-धाम पृथ्वी पर सगुण साकार रूप में अवतरित होता है। तुलसी के राम सगुण होते हुए भी अनघ, अद्वैत, अज और अविकार हैं :

"अनघ-अद्वैत, अनवद्य अव्यक्त अज,
अमित अविकार आनन्द सिन्धो।"

परन्तु वे भक्तों के लिए लीलावतारी होकर नर-देह धारण करते हैं :

"जयति सच्चिद्व्यापक यद् ब्रह्म,
विग्रह व्यक्त लीलावतारी।
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचवस,
विमल गुन-गेह नर-देह धारी।"

सूर के प्रभु अविगत हैं, परन्तु उन अविगत को ज्ञान से जो जान ले, वही उन्हें पा सकता है। अतः निर्गुण निराकार को सब प्रकार से अगम विचार कर वे सगुण ब्रह्म की लीला का गान करते हैं :

"अविगत की गति कहत न आवै।
ज्यों गूंगहि मीठे फल को रस अन्तर्गत ही भावै।
परम स्वाद सबही जो निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर जो जानै सो पावै।
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै।"

अतः सूर और तुलसी दोनों का ब्रह्म निर्गुण-निराकार होते हुए भी लीलावतारी ब्रह्म है। सूर की भक्ति सख्य भाव की और तुलसी की दास भाव की है। साथ ही सूर की अपेक्षा तुलसी कहीं अधिक मर्यादावादी हैं। अपनी इस मर्यादावादिता के कारण तुलसी 'विनय-पत्रिका' के आरम्भ में समस्त देवताओं की प्रार्थना करते हैं, परन्तु माँगते उनसे रामभक्ति ही है। (माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम-सिय मानस मोरे।) अतः उनके उपास्य राम ही रहते हैं। दूसरी ओर सूर के लिए अपने प्रभु के अतिरिक्त अन्य सारे देवता रंक और भिखारी हैं :

"और देव सब रंक भिखारी,
त्यागे बहुत अनेरे।"

तुलसी की भक्ति चातक की अनन्यता का आदर्श प्रस्तुत करती है। वे और रचना को सम्बोधन करते हुये कहते हैं :

राम-राम रटु, राम-राम रटु राम-राम जपु जीहा ।
राम-नाम नव-नेह-मेह को मन ! हठि होहि पपीहा ।।
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा ।
राम-नाम रति स्वाति सुधा सुभ सीकर प्रेम पियासा ।।
गरजि-तरजि पाषान बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ।।
राम-नाम गति राम-नाम मति राम-नाम अनुरागी।
ह्वै गये हैं जे होहिंगे त्रिभुवन तेइ गनित सभागी ।।
एक अंग मग अगम गवन कर विलमु न छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनी दिसि निरुपधि नेम निवाहैं ।"

सूर के 'भ्रमरगीत' का निर्माण निर्गुण और सगुण के विवाद को आधार बनाकर हुआ है। 'भ्रमरगीत' को गोपियाँ उद्धव के योग एवं निर्गुण निराकर के उपदेश का खण्डन करती हुई सगुण-साकार की स्थापना करती है। 'भ्रमरगीत' में सिद्धान्त-पक्ष भावपक्ष से प्रबल हो उठा है। 'विनय-पत्रिका, के सूर 'भ्रमरगीत' की तरह किसी सिद्धान्त विशेष के प्रतिपादन का आग्रह नहीं करते है। उनके लिए द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद तीन साधना-पथ भ्रम-मात्र हैं। व यही कहते हैं कि इन तीनों भ्रमों को छोड़कर जीव अपने स्वरूप को पहचान सकता है :

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरि तीनों भ्रम सो आपुन पहिचानै ।

गोस्वामी तुलसीदास के लिए पंथ और पुराण आदि झगड़ा मात्र हैं। उनके लिए तो राम-भजन ही एक मात्र राज मार्ग है। वही भवसागर से पार कर सकता है :

"आश्रम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहुँ न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरो सो।
बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत बाज डगरो सो।
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिर फिर पचि मरै मरो सो।
राम नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो ।"

'भ्रमरगीत' में निर्गुण निराकार और योग साधना के खण्डन में जो स्पष्ट कथन है उनका 'विनय-पत्रिका' में अभाव है। गोपियाँ स्पष्ट रूप से उद्धव के निर्गुण निराकार और योग का खण्डन करती हुई कहती हैं :

"हमारे कौन जोग व्रत साधै ?
मृग-त्वच, भस्म, अधारि जटा को, कों इतनो अबराधै।
जाकी कहुँ थाह नहि पैए अगम अपार अगाधै।
गिरधर लाल छबीले सुख पर इते बाँध को बाँधै।
आसन पवन विभूति मृगछाला को अबराधै।
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठ को बाँधै।

सूर की भक्ति-भावना में जहाँ ज्ञान का विरोध 'गूँगे का गुड़' कहकर किया

गया है, वहाँ तुलसीदास ने ज्ञान को प्रमुख स्थान दिया है। वे बारम्बार जीव को ज्ञान का आश्रय लेने को कहते हैं :

"जागु-जागु जीव जड़ ! जो है जग-जामिनी।
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी ॥
सोवत सपनेहुँ सहै संसृत संताप रे ।
बूड्यो मृग बारि खायो जेबरी को साँप रे ।"

सूर-तुलसी की भक्ति भावना का अन्तर का कारण—दोनों के दार्शनिक विश्वासों के भिन्नता के कारण उनकी भक्ति-भावना में भी अन्तर हो गया है। तुलसीदास शंकराचार्य के मायावाद के किसी सीमा तक विश्वासी थे, लेकिन सूरदास शंकराचार्य के मायावाद के सर्वथा विरोधी थे। सूरदास ने अपनी साधना-पद्धति में केवल बल्लभाचार्य के 'पुष्टि-सिद्धान्त' को ही ग्रहण किया, जबकि तुलसीदास ने अपनी भक्ति-भावना में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वय किया है। सूरदास गोकुल को गोलोक मानते हैं, परन्तु तुलसीदास के लिए समस्त जगत ही मिथ्या है, फिर तुलसी की भक्ति दास भाव की और सूर की सख्य भाव की है। अतः सूर में जहाँ प्रेम की प्रधानता है, वहाँ तुलसी में सेवा भाव की प्रधानता है। सूरदास अपनी सख्य-भाव की उपासना के कारण गोलोक बिहारी श्रीकृष्ण के साथ आनन्द लीला करने का अपने को सीधा अधिकारी मानते हैं। लीला बिहार में मर्यादा को स्थान कहाँ ? यही कारण है कि सूर की गोपियाँ कृष्ण को खरी खोटी सुनाने में भी नहीं चूकतीं। वे कृष्ण को उपालम्भ देती हुई उनको काला साँप तक कह देती हैं :

"मधुकर यह कारे की जाति।

× × ×

"बिलगि जनि मानौ ऊधौ प्यारे
वह मथुरा काजर कि कोठरी जे आवहि ते कारे।
तुम कारे, सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अति ही छबि पावत कमल नयन मनियारे।
मानहुँ नील माठ तैं काढ़े जमुना जल धोइ पखारे।
ता गुन श्याम भई कालिन्दी सूर श्याम गुन न्यारे।

"काहे को गोपीनाथ कहावत ?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत।
जो पै स्याम कूबरी रीझे, सो किन नाम धरावत।
ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत।
कहन सुनन को हम हैं ऊधौ, सूर अनत विरमावत।"

भक्त तुलसी में आत्म बोध की प्रधानता है। उनकी भक्ति सेव्य सेवक भाव की है। अतः वे न तो अपने उपास्य देव को उपालम्भ दे सकते हैं और न खरीखोटी ही सुना सकते हैं। वे सभी कुछ दीनता, विनम्रता और निष्कपटता से ही कहते हैं :

"मुख कै कहा कहौं ! विदित है जी की प्रभु प्रवीन को।
तिहूँ काल, तिहूँ लोक में एक राबरी तुलसी से मन मलीन को।

तुलसी की भक्ति भावना ज्ञान की परिधि में विशुद्ध आध्यात्मिकता के धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है, परन्तु सूर की भक्ति भावना प्रेम भावना की परिधि में कहीं-कहीं विशुद्ध लौकिकता का भी स्पर्श कर उठती है।

'विनय-पत्रिका' के पदों की अपेक्षा 'भ्रमरगीत' के पदों में भावों की कोमलता और प्रेम से गद्गद् हृदय की सरसता अधिक है। निम्न पद में प्रेम की कितनी अधिक एकान्त प्रेम निष्ठा है। गोपियों के मन में कृष्ण ऐसे छा रहे हैं कि कोई स्थान ही रिक्त नहीं रहा है। तब वे निर्गुण ब्रह्म, योग आदि को स्थान कहाँ दें, फिर उनके तो मन एक ही था, जो श्याम के साथ चला गया। अतः ऊधो के ईस की आराधना कौन करे :

"नाहिं न रह्यो मन में ठौर।
नदनंदन अछत कैसे आनिये उर और ?
चलत चितवत दिवस जागत सपन सोवत राति।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधो, लोक लाभ दिखाय।
कहा करो मन प्रेम पूरन, घर न सिन्धु समाय।
स्यामगत सरोज आनन ललित अति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।"

ऊधो मन नाहीं दस बीस।
एक जु हुतो गयो स्याम सँग को आराधै ईस।

गोस्वामी तुलसीदास की विनय पत्रिका पश्चाताप दैन्य, आत्म-दोष-दर्शन आदि से आद्यान्त परिपूर्ण है, कोई भी पद ऐसा नहीं मिलेगा, जिनमें इन भावों की अभिव्यक्ति न हो :

"कबहुँ मन विस्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ-तहँ इन्द्रिन तान्यो।
जदपि विषय संग सह्यो दुसह दुख विषय जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममतावस जानत हूँ नहिं जान्यो।
जनम अनेक किये नाना विधि कर्म-कीच चित सान्यो।

'भ्रमरगीत में विनय पत्रिका जैसे दैन्य और पश्चाताप के लिये कोई स्थान नहीं है।

सूर की भक्ति-भावना में मिलन कामना की प्रधानता है। अतः भ्रमर गीत के पदों में मिलन की आतुरता और छटपटाहट है। तुलसी ने ज्ञान और प्रभु-कृपा से संसार की असारता एवं कष्टों को और साथ ही सर्व शक्तिमान अपने इष्टदेव राम को पहिचान लिया है। अतः वे भव भव भय से मुक्ति पाने के लिये प्रभु कृपा ही बारम्बार माँगते हैं :

जैसो हौं वैसो हौं राम ! रावरो जन जामि परिहरिये।
कृपासिन्धु कोमल धनी सरनागत पालक आपनी ढरिये।।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूर और तुलसी की भक्ति भावना में सिद्धान्त तथा भाव-दृष्टियों का जो अन्तर है, वही 'भ्रमरगीत' और विनय पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। तुलसी में जहाँ शील, मर्यादा और ज्ञान की प्रधानता है, वहाँ सूर में सौन्दर्य और प्रेम ही प्रेम है। दोनों की भक्ति भावना अपने अपने क्षेत्र में चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है।

———

अध्याय 15

विनय-पत्रिका के राम

प्रश्न 54—'विनय-पत्रिका' में राम के चित्रित रूप का निरूपण कीजिए।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' आत्मोद्धार तथा समाजोद्धार की दृष्टि से लिखा गया 'विनय-काव्य है। तुलसी ने अपनी व्यथा वेदना के रूप में समस्त समाज की व्यथा-वेदना अभिव्यक्त की है। 'विनय-पत्रिका, में 'रामचरित मानस' के 'राम' के स्वरूप का प्रतिपादन नहीं हुआ है। 'रामचरितमानस के राम अवतारी महापुरुष हैं. अत: उनके ईश्वर रूप के साथ-साथ लौकिक आचरण का भी चित्रण हुआ है। राम के चरित्र का विकास पारिवारिक सम्बन्धों तथा दुख सुख की समस्त परिस्थितियों एवं लोक रक्षक कार्यों के बीच में होता है। 'विनय-पत्रिका' के राम का स्वरूप इससे भिन्न है।

'विनय-पत्रिका' का प्रारम्भिक भाग विनयावली है, इसमें गणेश, सूर्य, शिव; दुर्गा, भैरव, गंगा आदि समस्त देवताओं की आत्मीयतापूर्ण विनय उनके गुणों एवं शक्ति का उद्घाटन करते हुये की गई है। परन्तु अन्त में उनमें से प्रत्येक से राम-का ही बरदान माँगा गया। 'विनय-पत्रिका' का प्रारम्भ 'गाइये गनपति जगबंदन' से होता है : गणेश जी सिद्धि-सदन' 'कृपा-सिन्धु' और 'सर्व शक्तिमान' हैं। तुलसी दास उनसे इष्टदेव को हृदय में बसाने का वरदान माँगते हैं :

"माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहि राम सिय मानस मोरे।"

इसी प्रकार शिव, सूर्य, दुर्गा, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट की स्तुति करते हुये इन सबों से राम-भक्ति माँगी है।

शिव की स्तुति

'देहु काम रिपु राम चरन रति तुलसिदास कहँ कृपा निधान।'

सूर्य की स्तुति

दीनदयालु दिवाकर देवा।
कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा॥
वेद पुरान प्रगट जस जागै।
तुलसी राम भक्ति वर माँगै॥

दुर्गा की स्तुति

"दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया।
देहि माँ मोहि पन प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम तुलसी पपीहा।

देवताओं की स्तुति में अपनी मर्यादावादी प्रकृति के कारण गोस्वामी तुलसीदास उनके प्रति आस्था अवश्य प्रकट करते हैं, परन्तु सभी से राम भक्ति

मांगकर एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा करते हैं। विनय पत्रिका के राम ऐसे अनन्त और सर्वशक्तिमान हैं कि समस्त देवताओं की लय उन्हीं में हो जाती है। 'विनय पत्रिका' में राम के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूप हैं। वे पूर्ण परमेश्वर हैं। वे देवाधिदेव हैं और जानकी जी उनकी शक्ति हैं। राम के इस रूप को गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित-मानस में भी व्यक्त किया है :

श्रुति सेतु पालक राम तुम हो जगदीश माया जानकी :
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाय कृपा निधान की।
जो सहस सीस अहीस महिधर लषन सचराचर धनी।
सुर काज हित नरराज तनु धरि चलेहु दर्दन खल अनी।

विनय पत्रिका के राम

'विनय पत्रिका' के राम 'सच्चिदानन्द', 'परब्रह्म' लीलावतारी हैं—
'जयति सच्चिददव्यापकानन्द यद, ब्रह्म बिग्रह व्यक्त लीलावतारी।
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचवस विमल गुन-नेह नर देह धारी।
जयति कोसलाधीस कल्यान कोसल-सुता कुसल कैवल्य-फल चारु चारी।
बेद बोधित कर्म-धर्म-धरनी-धेनु विप्र सेवक साधु मोदकारी।
जयति रिषि मख पाल समन सज्जन साल सापवस मुनि वधू पाप हारी।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली सहित भृगुनाथ नत माथ भारी।
जयति धार्मिक-धुर धीर रघुवीर गुरु मातु पितु बन्धु बचनानुसारी।
चित्रकूटादि विन्ध्यादि दंडक बिपिन धन्य कृत पुन्य कानन विहारी।
जयति पाकारि-सुत काक करतूति फलदानि खनि गतं गोपित विराधा।
दिव्य-देवि-वेष देखि लखि निसिचरी विडम्बित करी विश्व बाधा।
जयति खर त्रिसिर दूषन चतुर्दस सहस सुभट मारीच संहार कर्त्ता।
गृध्र सबरी भक्ति बिवस करुनासिंधु चरित निरूपाधि त्रिविधाति हर्त्ता।
जयति मद अंध कुक बन्ध बधि बालि बल सालि बधि करन सुग्रीव राजा।
सुभट मर्कट भालु कटक संघट सजत नमत पद रावनानुज निवाजा।
जयति पयोधि कृत सेतु कौतुक हेतु काल मन अगम लई ललकि लंका।
सकल सानुज सदल मर्दित दसकंठ रन लोक लोकप किए रहित संका।
जयति सौमित्र सीता सचिव सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी।
दास तुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप वैदेहि रानी।
[पद-संख्या 43]

इस पद में राम को सच्चिदानन्द, परब्रह्म लीलावतारी बतलाकर रामावतार का संक्षेप में उल्लेख किया है। इसमें राम का अलौकिक रूप ही प्रधान है। उनकी लौकिक लीलाएँ उनके अलौकिक स्वरूप की ही प्रतिष्ठा करती हैं। तुलसी ने राम को सच्चिदानन्द ब्रह्म होने के साथ ही लीलावतारी भी कहा है, परन्तु वे सूर के कृष्ण की तरह लीलावतारी नहीं हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने हरि हर में अभेद की स्थापना की है। उन्होने विष्णु और शिव के अभेद रूप को ही अपने हृदय में बसाया है।

जानकी नाथ रघुनाथ रागादि तम तरनि तारुन्य तनु तेजधामं।
सच्चिदानन्द आनन्दकंदाकरं विश्व विस्राम रामाभिरामं॥
नील नव बारिधर सुभग सुभ कांतिकर पीत कौसेय बरबसन धारी।

दनुज व दहन गुन गहन गोविन्द नंदादि आनंददाताऽविनासी।
संभु, सिव, रुद्र, संकर, भयंकर भीम घोर तेजायतन क्रोध रासी।

× × ×

ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर परम हित,
ग्यान गोतीत गुन वृत्ति हर्त्ता।
सिंधु सुता गवं गिरि बज्र गौरीस भव,
दच्छ मख अखिल विध्वंसकर्त्ता।

× × ×

नील जलदाभतनु श्याम बहु काम छबि,
राम राजीव-लोचन कृपाला।
कंजु कर्पूर बपु धवल निर्मल,
मौलि लटासुर तरिनि सित सुमन माला।

विनय पत्रिका के राम सन्तों का सन्ताप हरण करने वाले, विश्व को विश्राम देने वाले और शिव जी को सुखकारी है। वे सच्चिदानन्द धन और सज्जनानन्द हैं :

सन्त सन्तापहर, विस्व विस्रामकर,
राम कामादि अभिरामकारी
सुद्धबोधायन सन, सच्चिदानन्द घन,
सज्जनानंद बर्द्धन खरारी ।

विनय पत्रिका के राम का यथार्थ स्वरूप निम्न पंक्तियों में अंकित हुआ है :

नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुनानंत,
भगवन्त नियामक नियंता।
विश्व पोषन भरन विश्व कारन करन,
सरन तुलसीदास त्रास हंता।

'विनय-पत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास ने राम के निराकार रूप को प्रतिष्ठा करके उन्हें जगत् का चित्रकार कहा है :

केसव कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय इहि तनु हेरे।

ये निर्गुन ब्रह्म सदय होकर दीनों पर कृपा करते हैं। 'विनय-पत्रिका' के राम दीन-हितकारी, करुणा निधान, बिना कारण उपकार करने वाले हैं। उन्होंने साधन-हीन शिला का उद्धार किया और अधम जाति की शबरी को भक्ति देकर अपना धाम दिया। उन्होंने इतने अधिक दीन-दुखियों की विपत्ति दूर की, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती :

"ऐसे राम दीन हितकारी।
अति कोमल करुना निधान बिनु कारन पर उपकारी।
साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई पुनि नारी।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी।

हिंसारत निषाद तापस बपु पसु समान बन चारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति विचारी।
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाय अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी।
बिहंग जोनि आमिष अहारबस गीध कौन व्रत धारी।
जनक समान किया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी।
अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक-वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी।
कपि सुग्रीव बन्धु-भय व्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी।
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंटयो भुजा पसारी।
असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ विकारी।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी।
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम विपति विदारी।
कलिमल ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी।"

निष्कर्ष— उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' के राम निर्गुण और सगुण दोनों ही हैं। उनके लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों का उद्घाटन 'विनय-पत्रिका' में हुआ है। 'विनय-पत्रिका' के राम निर्गुण निर्विकार पूर्ण ब्रह्म होते हुए भी दीनदयालु और आरत-आरती हर हैं। व अकारण दयालु हैं। 'विनय-पत्रिका' के राम का पूर्ण ब्रह्मत्व भक्त और ज्ञानी दोनों ही का ग्राह्य है।